

पुस्तक : कषाय-मुक्ति
(सुगम मोक्ष मार्ग)
लेखक : स्व. प्रतापचन्दजी भूरा
प्रकाशक : चैन रूप भूरा
प्रथम अनावरण : अगस्त, 2006
मुद्रक : सुराणा उद्योग, बीकानेर
0151-2633533, 2641207.

:: प्राप्ति स्थान ::
चैनरूप भूरा
ललवाणी मौहल्ला, नई लेन,
गंगाशहर (बीकानेर)
फोन : 0151-2272964

प्राक्कथन

भारतीय संस्कृति के विविध आयामों में कषाय मुक्ति के आयाम पर प्रबलतम बल दिया गया है। अनन्त की यात्रा में सांयन्त्रिक को प्रेरित किया है कि अगर तुम्हें जीवन को सर्वोपरि बनाना है तो सर्व प्रथम तू कषाय से विमुक्त बन। जब तक कषाय की शृंखला से आबद्ध है तब तक अपने मुख्य मुकाम अर्थात् लक्ष्य को साध नहीं सकता।

रामचरित्र मानस के प्रणेता गोस्वामी तुलसी ने भी क्या सटीक कहा है कि—

तुलसी भीठे वचन से, सुख उपजत चहुँ ओर।

वशीकरण इक मंत्र है, परिहर वचन केठोर॥

संसार एक अजायबघर है जिसमें भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोग रहते हैं। वे अपनी वृत्ति/व्यवहार के द्वारा सुख-दुःख की परिणति को प्राप्त करते हैं। यदि इन काषायिक वृत्तियों का परिहार करदे तो व्यक्ति स्वर्गिक छटा से अनुप्राणित होकर अपने गन्तव्य तक पहुँचने में सफल हो सकता है।

आगम में कषाय के विषय में विश्लेषण करते हुए बताया है कि देशोन कोटि (करोड़ वर्ष) पर्यन्त की गई तपश्चरण रूप क्रिया व चरित्र का जिस रूप में उपार्जन किया वह एक मुहूर्त काल तक की गई कषाय से नष्ट हो जाती है। इसलिए वैयक्तिक जीवन में काषायिक परिणति से दूर रहना चाहिए।

सदा समभाव की अवस्था में विचरण करते हुए लक्ष्य तक पहुँचने का प्रयास करना चाहिए। अन्यत्र भी कहा गया है कि—

प्रथमे यः शान्तः, ते शान्तः मे मतिः।

धातुक्षीयमानेषु शान्तः को न जायते॥

इन पुस्तकों में इन अवगुणों को छोड़ने के लिए भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से साधना करने की विधियों पर प्रकाश डाला गया है। जैनागमों में स्वाध्याय-तप में विविधता को बहुत महत्त्व दिया गया है। अतः पुस्तक में कुछ बातों की विविधता दृष्टिगोचर हो रही है जो कि साधना का एक अंग है।

धर्म कोविद, तत्त्वज्ञ श्रीमान् प्रतापचन्दजी सा. भूरा ने इन पुस्तकों को स्वयं जीवनपर्यन्त साधना करके अपने मौलिक अनुभव के आधार पर लिखा है, अतः ये आत्मा को छूती हैं। इनको पढ़ना, इनका स्वाध्याय करना और जीवन की प्रवृत्तियों में इनका समायोजन करना कर्मों के नाश में प्रबल सहायक है।

आज मानसिक तनाव से पीड़ित समाज के लिये ऐसी ही पुस्तकों की महती आवश्यकता भी है जो अवगुणों को दूर करने एवं मानसिक तनाव को हटाने में अपनी अहं भूमिका अदा कर सकती हैं।

इन पुस्तकों की उपयोगिता इस बात से प्रमाणित होती है कि इनमें से "समता-जीवन", "ध्यान एक अनुशीलन", "कषाय मुक्ति" पहला भाग और "कषाय मुक्ति" दूसरा भाग धार्मिक परीक्षा बोर्ड के भूषण परीक्षा के पाठ्यक्रम में समता विभूति आचार्यश्री नानेश की कृपा से रखी गई।

कषाय और अन्य अवगुणों से मुक्त होने के लिए क्षमा, विनय, सत्याचरण, लोभ-मुक्ति आदि गुण प्राप्त करने के लिए कषाय-मुक्ति की पुस्तकों को केवल पढ़ना ही काफी नहीं है, किन्तु इन पुस्तकों का क्रमशः कुछ महीनों तक प्रतिदिन निरन्तर स्वाध्याय करना आवश्यक है। पाठकों की सुविधा के लिए समग्र पुस्तकों की सामग्री इसी एक पुस्तक में समाहित करदी गई है।

विश्वास है कि पाठकों को यह पुस्तक "समता आचरण" के उच्च शिखर की ओर बढ़ाने के लिए स्फटिक-सोपानों की भाँति "कषाय-मुक्ति" का मार्ग सुझाएगी।

भगवान महावीर ने अपनी मूलवाणी में भी कहा है—

कसिणा कसाया सिंचन्ति, जीवस्स पुणभवस्स।—उत्तराध्ययन चूर्णी

कषाय ही हमारे पूर्व भवों के आधार पर आगामी जन्मों की शृंखला तैयार करते हैं। अतः इनका परित्याग कर हम सिद्धि सौध को प्राप्त करें, यही पुस्तक का लक्ष्य है। सुज्ञ पाठक इससे लाभान्वित होंगे।

दिनांक : 05-08-2006

मेघराज बोथरा

बोथरा चौक, गंगाशहर

प्रकाशकीय

उक्त प्रकाशन वरिष्ठ लेखक निष्ठावान प्राध्यापक और साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के संयोजक/पंजीयक स्व. प्रतापचन्दजी भूरा की इन कृतियों/पुस्तकों का संग्रह है—कषाय मुक्ति प्रथम भाग (समता आचरण, सुबोध मोक्ष-मार्ग), द्वितीय भाग (कषाय-मुक्ति एक विवेचन), तीसरा भाग एवं चौथा भाग (धर्म कथा द्वारा स्वाध्याय व तप), पाँचवाँ भाग (स्वाध्याय-संग्रह मोक्ष-मार्ग), छठा भाग (धर्म विचार सार), सातवाँ भाग (दोष मत दो निमित्त को), आठवाँ भाग (सिद्ध पद प्राप्ति की साधना), नौवाँ भाग ('समीक्षण ध्यान' मेरी दृष्टि में), दसवाँ भाग (अभय बनूँगा, सिद्ध बनूँगा) ग्यारहवाँ भाग (मोक्ष मार्ग का पथिक), बारहवाँ भाग (कषाय व मोह छोड़ने के उपाय) एवं ध्यान एक अनुशीलन।

पुस्तकें सर्वसाधारण पाठकों द्वारा उपयोगी समझी गई हैं व इनकी माँग भी काफी रही इसलिए समय-समय पर धर्मनिष्ठ सुश्रावकों तथा श्री साधुमार्गी जैन संघ गंगाशहर-भीनासर द्वारा इनका प्रकाशन कराया जाता रहा, जिनका विवरण इस प्रकार है—प्रथम भाग, प्रथम संस्करण, मई 1984, प्रति 2100; द्वितीय संस्करण, अगस्त 1987, प्रति 2200; द्वितीय भाग, प्रथम संस्करण, 1986, प्रति 2000; द्वितीय संस्करण, अगस्त 1987, प्रति 2200; तीसरा भाग, प्रथम संस्करण, फरवरी 1988, प्रति 3000; चौथा भाग, प्रथम संस्करण, जुलाई 1988, प्रति 2500; पाँचवाँ भाग, प्रथम संस्करण, जून 1989, प्रति 2500; छठा भाग, प्रथम संस्करण; सातवाँ भाग, प्रथम संस्करण, अक्टूबर 1990, प्रति 4000; आठवाँ भाग, प्रथम संस्करण; संयुक्त 4 से 8 भाग, संवत् 2049; नौवाँ भाग, प्रथम संस्करण; दसवाँ भाग, प्रथम संस्करण, सितम्बर 1993, प्रति 3000; ग्यारहवाँ भाग, प्रथम संस्करण, जुलाई 1995, प्रति 1500; बारहवाँ भाग; संयुक्त 9 से 12 भाग, प्रथम संस्करण, जुलाई 1996, प्रति 1100; ध्यान एक अनुशीलन, प्रथम संस्करण, जनवरी 1986, प्रति 2500।

यह प्रकाशन पूज्य पिताश्री एवं मातुश्री की पुण्य स्मृति में कराया जा रहा है।

—चैनरूप भूरा

धर्मनिष्ठ सुश्रावक श्री प्रतापचंदजी भूरा परिचय

जन्म स्थान	:	देशनोक
जन्म	:	विक्रम संवत् 1962
पिता	:	श्री सदासुखजी भूरा
माता	:	वृद्धिदेवी
दादा	:	श्री चौथमलजी भूरा
श्वसुर	:	श्री सेंसमलजी कोचर (मेहता), सोजत सिटी
धर्म पत्नी	:	स्व. नेमकंवर
शैक्षणिक योग्यता	:	Intermediate from Board of High School & Intermediate Education, United Provinces, Allahabad in 1928.
	:	B.A. from Agra.
	:	B.T. from Banaras Hindu University, Banarsa.
स्कूल काल की उपलब्धियाँ	:	करणी हाई स्कूल, देशनोक छात्र संघ के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया।
धार्मिक एवं सामाजिक उपलब्धियाँ	:	अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा संचालित साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के संयोजक/ पंजीयक के पद पर लम्बे समय तक अपनी सेवाएँ दी।
	:	श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर-गंगाशहर के मंत्री/ उपमंत्री 1970 से 1986 तक। 21-10-1984 से 06-09-1986 तक साधुमार्गी जैन संघ गंगाशहर-भीनासर के मंत्री 2019 से 2038 तक स्थानीय साधुमार्गी जैन संघ बीकानेर, गंगाशहर- भीनासर द्वारा सम्मानित।

कषाय मुक्ति : समता आचरण

सुबोध मोक्ष — मार्ग

प्रथम भाग

1. अहंकार

आचार्यश्री नानालालजी म. सा. का श्रमणोपासक 10 जनवरी 1984 पृष्ठ नव पर कथन है—“समता भावना पाने के लिये सर्व प्रथम अहमत्व और ममत्व विसर्जन करना आवश्यक है।”

प्राणी के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के उत्थान में अहंकार सबसे बाधक तत्त्व है। 1. अहंकार शराब की तरह मनुष्य को पागल जैसा बना देता है। शराब पीने से नशा आता है किन्तु अहंकार से तो वैसे ही चौबीसों घंटे नशा रहता है। अहंकार से मनुष्य की बुद्धि दब जाती है। उसे अच्छे और बुरे का भेद दीखना बंद हो जाता है। वह गलत निर्णय पर पहुँच जाता है और गलत काम कर डालता है। ऐसे कामों के लिये उसे बाद में बहुत पछताना पड़ता है। 2. अहंकार से मित्रों की संख्या घट जाती है और शत्रुओं की संख्या बढ़ जाती है। दूसरे लोग उससे भीतर ही भीतर घृणा करने लगते हैं और उसे नीचा दिखाने की ताक में रहते हैं। मौका मिलने पर लोग अभिमानी का आर्थिक नुकसान भी करते हैं। 3. अहंकारी सभी को अप्रिय लगता है। उसे कोई मन से सहयोग देना नहीं चाहता। 4. अहंकार से अशुभ कर्मों का आगमन और बंधन होता है। 5. अहंकार से दान, शील, तप आदि अच्छी करणी का फल भी प्रायः निरर्थक-सा बन जाता है।

दूसरों को मूर्ख समझने वाला और स्वयं की बुद्धि का अभिमान करने वाला तन्दुल मत्स्य सातवें नरक में जाता है। वह सोचता है—“यदि मैं इस बड़े मत्स्य की जगह होता तो एक भी मछली को बाहर नहीं जाने देता। सभी को निगल जाता।” अभिमान में की हुई भाव हिंसा से वह महा भयंकर अशुभ कर्मों का बंध करके सातवें नरक जाता है। अहंकार सभी बुराइयों की जड़ है।

बोध धर्म में अस्मिता-अभिनिवेश अर्थात् अहंकार को कर्मों के बंध का कारण माना गया है। जब भारत से धर्मबोधि नामक बौद्ध भिक्षु चीन गये तब

वहाँ के सम्राट बु ने उनका बड़ा सम्मान किया और पूछा—“मैंने भगवान बुद्ध के हजारों मंदिर बनवाये हैं उनकी लाखों मूर्तियाँ बनवाई हैं। मैंने बौद्ध धर्म के हजारों ग्रंथ लिखवाये हैं। मैंने घर-घर प्रचारक भेजकर बौद्धधर्म का बहुत प्रचार कराया है। मैंने हजारों बौद्ध भिक्षुओं को भोजन कराया है। मुझे इसका क्या फल मिलेगा ?” सम्राट बु सोचता था कि मुझे महान फल की प्राप्ति होगी। किन्तु उत्तर सुनकर उसे बहुत निराशा हुई।

बौद्ध भिक्षु धर्मबोधि ने कहा—“सम्राट ! इससे तुम्हारा कुछ भी आत्म-कल्याण नहीं होगा।” इससे तुम्हारे अहंकार की पुष्टि और तुष्टि हुई है। संसार में अहंकार ही सब से बड़ा पाप है और अहंकार-शून्यता ही सब से बड़ा धर्म है।”

अहंकार करने वाला प्रायः सोचा करता है—1. मैं जो सोचता हूँ वह ठीक है। 2. मैं जो कहता हूँ वह सही है। 3. मैं जो करता हूँ वह अच्छा है। 4. मैं बुद्धिमान हूँ। 5. मैं दूसरों से अच्छा हूँ। 6. मैं बड़ा आदमी हूँ। 7. लोग मेरे जैसे बनें। ऐसे लोग तलवार के बल पर भी दूसरों को अपने जैसा धार्मिक बनाने की कोशिश करते हैं।

अहंकार कई रूपों में प्रकट होता है। कुछ लोग छोटी-छोटी बातों को अपनी इज्जत का प्रश्न बना कर अकड़ जाते हैं और व्यर्थ ही वातावरण को अशांत बना कर तनावग्रस्त हो जाते हैं। कुछ लोग शाहबलूत के पेड़ की तरह अकड़ जाते हैं। चाहे वे सामने वाले लोगों के विरोध में टूट जावें लेकिन वे झुकते नहीं। कुछ लोग कूप में रहने वाले घमंडी मेंढक की तरह अपने को बैल से भी बड़ा दिखाने के लिये फूल-फूलकर फट जाते हैं। कुछ लोग मूर्ख कौवे की भाँति चालाक लोमड़ी जैसे लोगों की बातों में आकर अपने मुँह की रोटी भी खो देते हैं। अपनी बड़ाई सुनने का इच्छुक प्राणी प्रायः दूसरों से ठगा जाता है।

कुछ अपवादों को छोड़कर धनिकों को धन का, सत्ताधारियों को अपनी सत्ता का, विद्वानों को अपनी विद्या का, वक्ताओं को अपने भाषणों का, लेखकों को अपने लेखों का, गायकों को अपने गाने का और धार्मिक पुरुषों को अपनी धार्मिक क्रिया का अहंकार प्रायः हो ही जाया करता है। किन्तु जिन त्यागी महात्माओं ने अपनी आत्म-साधना के लिये अपना धन, परिवार, सुख और सब कुछ छोड़ दिया है उन्हें तो अहंकार के प्रति सतत जागरूक रहना चाहिये। ऐसा नहीं हो कि अहंकार के कारण अपनी साधना के मूल उद्देश्य से वे भटक जावें। संत चाहे कितना ही बड़ा, ज्ञानी और तपस्वी हो,

उनकी क्रिया भी कितनी ही कठिन और उच्च हो, किन्तु जरासी असावधानी होने पर अहंकार से उनका सारा तप और धार्मिक क्रियाएँ मोक्ष प्राप्ति की दृष्टि से प्रायः निरर्थक-सी बन जाती है।

मनुष्य को सबसे बड़ा अहंकार अपनी बुद्धि का होता है। मूर्ख, अशिक्षित, अज्ञानी, दीन और भिखारी भी अपनी बुद्धि को सबसे बड़ी मानता है। किसी प्राणी को अपनी बुद्धि का अंत नहीं दीखता। यह मनुष्य का स्वभाव-सा बन गया है कि वह प्रायः दूसरों के कार्यों में त्रुटियाँ देखता रहता है। इससे उसके अहंकार की वृद्धि होती रहती है। जो प्राणी दूसरों में गुण देखने की कोशिश करता है वह अहंकार से बच जाता है और विनय गुण को प्राप्त करता है।

अहंकार जब उग्ररूप धारण करता है तो वह क्रोध के रूप में प्रकट होता है। वह लड़ाई-भगड़े और विनाश का कारण बन जाता है। बड़े-बड़े विश्व युद्ध भी अहंकार की प्रेरणा से होते हैं।

अहंकार मनुष्य की आँखों में, चेहरे पर, चाल में, बोली में, भाषण में, कामों में, पोशाक में और प्रायः प्रत्येक क्रिया में प्रकट होता रहता है। अहंकारी प्रायः सबसे आगे ऊँचे आसन पर बैठता है। भीड़ में वह सबके बीच में मुखिया बनता है। उसके मुँह से प्रायः अपनी प्रशंसा की बातें निकला करती है। उसके वाक्यों में 'मैं, मैंने, मुझे, मेरे द्वारा' आदि शब्द निकलते रहते हैं।

निरभिमानी व्यक्ति किनारे दूर कोने में रहता है। वह बहुत कम बोलता है। वह स्वयं को बड़ा नहीं बताता किन्तु हर काम का श्रेय दूसरों को देता है। उसकी बोली मधुर और प्रिय लगती है। उसकी बात सुनने से सुनने वालों को प्रसन्नता और शांति मिलती है।

अहंकार सब दुर्गुणों का मूल है। अहंकार छूटने से बाहुबलीजी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। अहंकार छूटने के ये उपाय हैं—

अहंकार से होने वाली हानि का बार-बार प्रतिदिन अध्ययन और चिंतन किया जाय।

अपने अवगुणों की सूची बनावें, उनके लिये मन में पश्चात्ताप करें, उन्हें छोड़ने का संकल्प और प्रयास करें।

अपने से ऊपर बड़ों के गुण देखे जावें और उनसे अपनी तुलना की जावे। क्या मेरे पास शालिभद्रजी के बराबर धन, अभयकुमारजी के बराबर बुद्धि, गौतम स्वामी के बराबर ज्ञान है ? क्या मैं राजा हरिश्चन्द्र जैसा दानी

या धन्ना मुनि जैसा तपस्वी या मुनि गजसुकुमाल जैसा समतामय हूँ। यदि नहीं हूँ तो फिर अहंकार किस बात का ?

सतत जागरूकता रखी जाय। मिनट-मिनट में सोचिये कि मेरे विचारों, बोली या कामों में कहीं अहंकार तो नहीं आ गया है ?

2. समत्व

अहंकार के समान ही प्राणी का दूसरा प्रबल शत्रु है—ममत्व। ममता से कर्मों का बंधन होता है और समता से उनका क्षय होता है। प्राणी ममत्व भाव के कारण ही संसार में बंधा हुआ है। चवदह पूर्व के ज्ञान को धारण करने वाले, केवली तुल्य माने जाने वाले श्री गौतम स्वामी के केवलज्ञान की प्राप्ति में बाधक था केवल भगवान महावीर के देह के प्रति उनका प्रशस्त राग। वह राग भी अप्रशस्त नहीं था, फिर भी बाधक बना रहा। उसके दूर होते ही उन्हें कैवल्य की प्राप्ति हो गई। प्रातः स्मरणीय मरुदेवी माता ने कोई व्रत धारण नहीं किया था। उन्होंने कुछ भी त्याग प्रत्याख्यान नहीं किये थे, सामायिक या नवकारसी भी नहीं की थी, फिर भी हाथी के ऊपर ही गृहस्थ वेश में बैठे हुए भी पुत्र-मोह के समाप्त होते ही उन्हें केवलज्ञान और परमात्म-पद की प्राप्ति हो गई थी।

परिवार या सम्पत्ति के मोह में बंधा हुआ प्राणी अनेक बार मरने के बाद वहीं सर्प, बिच्छु, भैंसा, बैल, कुत्ता, बिल्ली, चूहा, मेंढक, छिपकली, कौवा आदि बनकर चक्कर काटता है और दुर्गति में जाता है।

ममत्व या राग से मुक्त होने के लिये तीन प्रकार की विचार-धाराओं में गहराई से उतरना चाहिये। प्रथम—सब प्राणी अलग-अलग हैं, एक दूसरे से पूर्णतः स्वतंत्र हैं। दूसरी—परिवार किसी को कर्म-दंड से बचा नहीं सकता। तीसरी—परिवार वालों से जैसा लेना-देना बाकी है वैसा ही बंध, वैसा ही सम्बन्ध और वैसा ही योग बनता है।

जीवन भर ममत्व-त्याग का उपदेश देने वाले संत महात्मा और चवदह पूर्व के ज्ञान के धारक गणधर गौतम जैसे ज्ञानी पुरुष भी समय पर राग में प्रवाहित हो जाते हैं। अतः ममत्व त्याग के लिये उपर्युक्त विचार-धाराओं का अधिक चौबीसों घंटे चिंतन-मनन करना आवश्यक है।

प्रथम विचार-धारा—निगोद के जीव इतने नजदीक-नजदीक हैं कि उनके एक-एक शरीर में अनन्त-अनन्त जीव हैं जो एक साथ सांस लेते हैं, एक साथ भोजन ग्रहण करते हैं, एक साथ जन्म लेते हैं और एक ही साथ मरते हैं। फिर भी उन सभी के परिणमन अलग-अलग हैं, उनके मन के

परिणाम भी अलग-अलग हैं। वे मरने के बाद सब साथ नहीं रहते। कुछ वहीं रह जाते हैं, कुछ तिर्यच बन जाते हैं, कुछ मनुष्य बन जाते हैं। वे सब अलग-अलग हो जाते हैं। वास्तव में सभी जीव अलग-अलग हैं, सब स्वतंत्र हैं, एक दूसरे से पृथक् हैं। कोई किसी का हमेशा का साथी नहीं है।

हम मानव तो बहुत विकसित प्राणी हैं। हमारे सबके पौद्गलिक शरीर भी अलग-अलग हैं, कर्मण शरीर भी अलग-अलग हैं, हमारे विचार, हमारे स्वार्थ, जीवन पथ, करणी, मन के परिणाम, हमारे पिछले जन्मों के स्थान जहाँ से हम आये हैं और भविष्य के जन्मों के स्थान जहाँ हमें इस देह को छोड़ कर जाना है वे सभी अलग-अलग हैं, हर दृष्टि से हम लोग अलग-अलग हैं। कोई किसी का आश्रित नहीं है, किसी का स्थायी साथी नहीं है।

परिवार में कोई किसी का 'अपना' नहीं है। भाई-भाई, पिता-पुत्र, यहाँ तक कि पति-पत्नी में भी अनेक बार अपने-अपने विचारों और स्वार्थ भेद के कारण भयंकर झगड़े और अलगाव पैदा हो जाते हैं। सुग्रीव-बालि, कर्ण-अर्जुन, कौरव-पांडव, सुन्द-उपसुन्द भाई-भाई ही तो थे। उग्रसेन-कंस, श्रेणिक-कोणिक, हिरण्यकश्यप-प्रह्लाद, शाहजहां-औरंगजेब पिता पुत्र ही तो थे। राजा प्रदेशी और सूरिकता पति-पत्नी ही तो थे। व्यवहार में परिवार परिवार दीखता है किन्तु निश्चय में कोई किसी का नहीं है। आप हमेशा चिंतन करते रहिये—

सब अलग अलग, सब अलग अलग।

सब अलग-अलग की भावना को दोहराने के साथ-साथ स्वयं को दूसरों से और दूसरों को स्वयं से अलग होने की स्थिति में देखने और अनुभव करने का अभ्यास भी करना आवश्यक है। इस सिद्धांत को अपने जीवन की सत्य घटनाओं में घटित हुए रूप में देखिये। सोचिये कि अमुक-अमुक व्यक्ति मेरे संबंधी हैं। मैंने उनके साथ अनेक बार अलग-अलग होने का व्यवहार किया है। मैंने उनका 'अपना' होकर कभी उनको सहयोग नहीं दिया। हम निश्चय दृष्टि से तो अलग-अलग ही हैं किन्तु व्यवहार में भी अलग-अलग हैं। इस प्रकार की सत्य घटनाओं के चिंतन से ममत्व तोड़ने की साधना में सफलता मिलेगी।

दूसरी विचार-धारा—कर्म-फल-भोग-दृष्टि से सब प्राणी अलग-अलग हैं। सब अपने-अपने कर्मों का फल स्वयं ही अलग-अलग भोगते हैं। हमारे कष्ट के समय दूसरे प्राणी—माता, पिता, बहन, भाई, पुत्र, पुत्री, पत्नी—सब

अपना लेना ले लेता है। यदि द्वेष से या दुःख देकर लेना बाकी है तो वह चोरी करके, डाका डालकर, या व्यापार में धोखा देकर या रिश्तों से अपना लेना ले लेता है और जिससे लेता है उसे दुःखी भी बना देता है। इसी प्रकार देने वाला भैंसा या बैल बनकर या नौकर बनकर भी अपना देना चुकाता है। यह लेना देना कर्मोदय के अनुसार सुख या दुःख के रूप में लेना-देना पड़ता है। यह छूटता नहीं है। इस लेन-देन में समता रखने वाला कर्मों की निर्जरा कर लेता है और राग-द्वेष और आर्तध्यान, रौद्रध्यान करने वाला नवीन कर्मों का बंधन कर लेता है।

जैसा लेना वैसा योग।

वैसा बंधन वैसा भोग।

चिंतन का सूत्र—परिवार में कर्ज चुकाया जाता है। वहाँ कोई किसी का 'अपना' नहीं है। सब अलग-अलग हैं।

आत्मोन्नति चाहने वाले प्राणी को निश्चय के साथ-साथ व्यवहार दृष्टि पर भी ध्यान देना चाहिये।

निश्चय दृष्टि चित्त धरी, पाले जे व्यवहार।

पुण्यवंत ते पामशे, भव सागर नो पार।

निश्चय दृष्टि से कोई किसी का अपना नहीं है। सब प्राणी अलग-अलग हैं किन्तु व्यवहार दृष्टि कहती है कि जब तक हम गृहस्थ हैं, परिवार में साथ-साथ रहते हैं, तब तक एक दूसरे के हित में निमित्त बनना हमारा कर्तव्य है। यह व्यवहार है, यह नीति है और यह आत्म-धर्म भी है। परिवार में साथ-साथ रह कर भी ममत्व-शून्यता का बहाना करके अपने परिवार वालों की उचित सेवा नहीं करना, उनको सम्यक् सहयोग नहीं देना, उन्हें निराश करना, धोखा देना, हिंसा है, पाप है।

ममत्व-शून्यता का यह अर्थ नहीं है कि हम परिवार में रहकर परिवार की सेवा नहीं करें। परिवार पर मोह नहीं रख कर सबको आत्मा, मात्र आत्मा मान कर उनकी आवश्यक उचित सेवा करना प्रत्येक गृहस्थ का धर्म है और गृह त्याग के बाद सारे समाज और प्राणी मात्र की आत्म-सेवा करना प्रत्येक त्यागी संत महात्मा का कर्तव्य है। तीर्थकरों ने भी समाज की आत्म-सेवा हित साधु, साध्वी, श्रावक श्राविका—इन चार तीर्थों की स्थापना की है और उन्हें दिव्य आत्मोपदेश देकर अपने कर्तव्य का पालन किया है।

दूसरों की सेवा करने वाला व्यवहार में तो दूसरों की सेवा करता हुआ दीखता है किन्तु निश्चय दृष्टि में तो वह दूसरों की सेवा नहीं किन्तु

अशुभ कर्मोदय से एक प्राणी पत्थर के ऊपर गिर जाता है, उसका पैर टूट जाता है। वह किसे शत्रु माने ? कैंसर होने से किस पर क्रोध किया जावे ? व्यापार में धन चला जावे या आग में सारी सम्पत्ति जल जावे तो किसे शत्रु माना जावे ? वास्तव में कोई किसी का शत्रु नहीं है। यह तो स्वयंकृत अशुभ कर्मों का दंड है जिसके फल-भोग से तीर्थंकर भी नहीं बच पाते।

भगवान महावीर ने अपने कानों में कील ठोकने वाले को शत्रु नहीं माना। मुनि गजसुकुमाल ने सोमिल को उपकारी माना। व्यवहार से शत्रु दीखने वाले पर हमें क्षमा भाव रखना चाहिये। कहा जाता है "66 क्रोड़ मास खमण के तप से भी क्षमा बड़ी है।" किसी ने कहा है—“क्षमा मर्त्यलोक से मोक्ष जाने का पुल है।”

शत्रुत्व का, द्वेष भावना का क्षय करने के लिये कुछ महीनों तक मुनि गजसुकुमाल, मुनि स्कन्दक, मुनि अर्जुनमाली आदि की अद्भुत क्षमा एवं समता का गुण-गान और ध्यान कीजिये। इससे आपको अपूर्व शांति मिलेगी और आप स्वयं किसी दिन मुनि गजसुकुमाल बन सकेंगे। बार-बार चिंतन-मनन कीजिये—

शत्रु नहीं कोई शत्रु नहीं है।

शत्रु नहीं है, शत्रु नहीं है।।

4. मुनि गजसुकुमाल का चिंतन

मुनि गजसुकुमाल अपने बड़े भाई महाराज श्रीकृष्ण के साथ हाथी पर बैठकर भगवान नेमिनाथ के दर्शन करने गये। राह में सोमिल ब्राह्मण की पुत्री, अद्वितीय सुन्दरी, रमणिरत्न सोमा को देखकर, गजसुकुमाल के सर्वथा योग्य समझकर महाराज श्रीकृष्ण ने उसे सोमिल की स्वीकृति से कुंआरे अन्तःपुर में भिजवा दिया, किन्तु कर्मों का विधान कुछ और ही था। गजसुकुमाल दीक्षित होकर श्मशान भूमि में जाकर ध्यानस्थ खड़े हो गये। सोमिल ने जब उन्हें इस साधु स्थिति में देखा तो पूर्व जन्म के वैर के कारण, बदला लेने के लिए क्रोध में आकर उसने मुनि गजसुकुमाल के सिर पर गीली मिट्टी की पाल बनाकर उनके सिर पर जलते अंगारे रख दिये। मुनि गजसुकुमाल का सिर जलने लगा। उनके शरीर में अथाह वेदना होने लगी, किन्तु वे शांत भाव से ध्यान में स्थिर होकर चिंतन करने लगे। उन्होंने कुछ-कुछ इस प्रकार का चिंतन किया होगा—

सोमिल मेरा शत्रु नहीं है। संसार में कोई किसी का शत्रु नहीं होता।

“सोमिल मेरा शत्रु नहीं, सहायक है, उपकारी है। वह आज मेरी कर्म निर्जरा में सहायक बना है। आज नहीं तो कभी-न-कभी तो इस कार्य के फल को मुझे भोगना ही पड़ता। यह अच्छा हुआ कि आज मेरी सदबुद्धि की अवस्था में, समता भावना की स्थिति में, इस कर्म-फल को समता भाव से भोगने का शुभ अवसर सोमिल ने मुझे दिया है। मैं उसका कृतज्ञ हूँ। आज मेरे कर्म-रोग की चिकित्सा हो रही है। कर्मों की निर्जरा हो रही है, आत्मा की शुद्धि हो रही है और संभवतः मोक्ष की प्राप्ति भी हो सकती है। सोमिल ने मेरा अहित नहीं किया है, मेरा हित ही किया है। अहित तो उसने अपना ही किया है। उसने मेरे निमित्त से भारी कर्मों का बंध किया है, जिसका दंड भोगना उसके लिए बहुत कठिन होगा। परमात्मा उसे सदबुद्धि दे, सुमति दे, सम्यक् ज्ञान दे और इस कर्म के फल को समता पूर्वक भोगने की शक्ति दे।”

कुछ लोग अपने दुःख में निमित्त बनने वाले को अपना शत्रु मानकर उससे बदला लेते हैं और कुछ लोग उसे क्षमा भी कर देते हैं किन्तु क्या कोई किसी को क्षमा प्रदान कर सकता है ? क्या पीड़ित के द्वारा क्षमा प्रदान किये जाने से पीड़क उस पाप के फल-भोग से छूट जाता है ? यदि ऐसा होता हो तो मैं एक बार नहीं, किन्तु हजार बार सोमिल को क्षमा प्रदान करता हूँ। मेरी ओर से वह पाप और पाप के दंड से मुक्त बने।

अपराधी सोमिल नहीं है। अपराधी तो मैं हूँ। मैंने पूर्व में भी पाप किया और निमित्त बनकर सोमिल के विचारों को विकृत एवं दूषित बनाकर उसमें बदला लेने की भावना उत्पन्न की और आज भी उसके लिए नवीन भयंकर कर्म बंध का निमित्त बना। क्षमा मुझे माँगनी चाहिए। वह तो आज मेरा उपकारी बना है। कर्म निर्जरा में सहायक बना है। मित्र सोमिल ! मेरे अपराध के लिए मैं क्षमा की भीख माँगता हूँ।

मेरे सिर पर जो रखे गये हैं वे अंगारे नहीं हैं। वे तो मेरे कर्म रोग काटने की गोलियाँ हैं। मेरे रोग को मिटाने की अचूक दवा है। मुझे इस दवा को समतापूर्वक पीना है। दवा तो दवा ही होती है। वह कभी मीठी और कभी कड़वी भी हो सकती है। ज्ञानी ऐसी दवा को ही कर्म-रोग काटने की दवा मानते हैं। उसका आनन्दपूर्वक सेवन करते हैं। वे चिकित्सक को शत्रु नहीं किन्तु अपना मित्र और एवं उपकारी मानते हैं। आज मैं इस दवा को पीकर रोग मुक्त बन सकूंगा। यह अमृत है, इसे पीकर अमर बन सकूंगा।

भगवान नेमिनाथ ने मुझ पर असीम कृपा की है। उन्होंने मुझे मेरे

इन भौतिक आँखों से देखा नहीं जा सकता। कान, नाक, जीभ और त्वचा से मैं जाना नहीं जा सकता। इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष रूप में मुझे नहीं जान सकने के कारण लोग सरलता से मेरे अस्तित्व का ज्ञान नहीं कर पाते। मेरे अस्तित्व में लोगों को शीघ्र ही श्रद्धा भी नहीं हो पाती।

मैं शरीर नहीं हूँ। मैं न स्त्री हूँ, न पुरुष हूँ। न बाल हूँ, न वृद्ध हूँ। न जैन हूँ, न अजैन हूँ। न शैव हूँ, न वैष्णव हूँ। न हिन्दू हूँ, न मुसलमान हूँ। न छूत हूँ, न अछूत हूँ। न बड़ा हूँ, न छोटा हूँ। न बुद्धिमान हूँ, न मुख हूँ। न अच्छा हूँ, न बुरा हूँ। मैं तो मात्र आत्मा हूँ। आत्मा के सिवाय और कुछ भी नहीं हूँ।

मैं चेतन हूँ—मेरे अस्तित्व का ज्ञान मेरी चैतन्यता के माध्यम से ही पाया जा सकता है। यह शरीर चेतना के सहारे ही खाता-पिता है, चलता-फिरता है, सुनता-बोलता है और देखता-जानता है। मेरे द्वारा इस शरीर को छोड़ दिये जाने के बाद यह शरीर कुछ भी नहीं कर सकता, बेकार हो जाता है, मिट्टी बन जाता है। लोग इसे क्षण भर भी घर में नहीं रखते। घर से बाहर श्मशान में ले जाकर इसे जलाकर इसकी भस्म बना देते हैं। मेरे अस्तित्व का सबसे प्रबल प्रमाण मेरी चेतना है, जो इस शरीर को चलायमान रखती है और जिसके निकल जाने पर जड़ देह जलाने योग्य बन जाती है।

मैं अवद्य हूँ—शस्त्रों द्वारा मेरा छेदन, भेदन या वध नहीं हो सकता। आग मुझे जला नहीं सकती। पानी मुझे गला नहीं सकता। हवा सुखा नहीं सकती। मैं अजर-अमर हूँ, मैं शाश्वत हूँ।

मैं ज्योति पुंज हूँ, मैं ज्योति हूँ, अदभुत ज्योति हूँ। संसार की सभी ज्योतियों से भिन्न हूँ। अतः मेरी कल्पना करना भी कठिन है।

मैं ज्ञान रूप हूँ—मैं (आत्मा) ज्ञानरूप हूँ, ज्ञान का भंडार हूँ। ज्ञान की न्यूनाधिकता का कारण मेरे ऊपर आया हुआ ज्ञानावरणीय कर्म का आवरण है, उसके हटते ही मैं सर्वज्ञ, सर्वदर्शी बन जाता हूँ।

मैं आनन्द घन हूँ—मैं आनंदमय हूँ। बाहरी मूर्त पदार्थों में सुख नहीं है, वहाँ तो सुखाभास है जिसका परिणाम कभी-न-कभी दुःख की प्राप्ति में मिलता है। मैं (आत्मा) स्वयं में स्थिर होकर स्वयं के द्वारा स्वयं की अनुभूति से, अकथनीय आनन्द पा सकता हूँ। वहाँ चिन्ता, भय, दुःख का नाम निशान भी नहीं है। आनन्द के लिए बाहर झाँकने की जरूरत नहीं है।

मैं निराकार हूँ—मेरा कोई आकार नहीं है। शरीर अवस्था में मैं शरीर

आठवां—मुनि गजसुकुमाल, मुनि स्कंदक आदि के जीवन के अंतिम समय में उनके शरीर से निकलकर ऊपर उठते हुए आत्मा का कल्पना द्वारा ध्यान किया जावे।

आत्म-भावना या आत्म ध्यान से केवलज्ञान की प्राप्ति भी संभव हो सकती है।

6. समता आचरण

समता आचरण का अर्थ है कि मनुष्य दुःखद और सुखद दोनों प्रकार की परिस्थितियों में अशुभ विचार और अशुभ काम नहीं करे। वह कुविचारों और कुकर्मों से दूर रहे। वह अच्छे विचारों और अच्छे कामों में ही लगा रहे। वह ऐसे विचार और ऐसे काम करे जिससे उसका अपना भला होवे और दूसरों का भी अहित नहीं होकर आत्म-हित होवे। समता आचरण समता विचारों से ही बना है। समता भावना के बिना समता आचरण नहीं बनता।

समता आचरण के लिये चार बातों से बचना आवश्यक है। 1. दुःख चेतना से बचना, 2. दुःख चेतना में अशुभ संकल्प-विकल्प से बचना, 3. सुख चेतना से बचना और 4. सुख चेतना में अशुभ संकल्प-विकल्प से बचना।

दुःख चेतना का अर्थ है—दुःखद परिस्थिति में दुःखी होना, व्याकुल होना, दुःख की अनुभूति करना। दुःख-चेतना से बचने का अर्थ है कि बाहर चाहे दुःखद स्थिति बन जावे किन्तु प्राणी के भीतर मन में दुःख नहीं आवे। वह आर्तध्यान नहीं करे, उसकी शांति भंग नहीं हो। मन में चिंता, भय, शोक, उदासी नहीं आने पावे।

मन में दुःख की चेतना आने पर प्राणी अनेक प्रकार के अशुभ विचारों में उलझ जाता है। वह अनेक प्रकार के अशुभ संकल्प-विकल्प करता है—यह काम करूं ? वह काम करूं ? क्या करूं ? क्या नहीं करूं ? दुःख से कैसे बचूं ? ऐसे विकल्पों से बहुत से बुरे काम भी हो जाते हैं। जो प्राणी दुःख चेतना से बचेगा, उसके विचार और उसका आचरण समता विचार और समता आचरण बने रहेंगे।

मुनि अर्जुनमाली का साधु जीवन पूर्ण समता आचरण का सर्वोत्तम उदाहरण है। दीक्षा लेने के बाद जब वे गोचरी जाते तब कुछ लोग उन्हें गालियाँ देते। कोई उन्हें पीट भी देता। कहीं अन्न मिलता तो जल नहीं मिलता। कहीं जल मिलता तो अन्न नहीं मिलता।

मुनि अर्जुनमाली चिन्तन करते—मैंने पूर्व जन्मों में और इस जन्म में लोगों को अन्तराय दी है। उस अन्तराय कर्म का फल मुझे अन्न-जल के

अन्तराय रूप में भोगना पड़ेगा। मैंने अनेक प्राणियों की हत्या की है, अनेकों को अनाथ बनाया है, उन्हें असाता पहुँचायी है। उसका फल भी मुझे दुःख और कष्ट के रूप में भोगना पड़ेगा। मुझे जो कष्ट मिल रहा है उससे अधिक दंड पाने का मैं पात्र हूँ।

महापुरुषों ने दुःख और कर्म काटने का उपाय बताया है—समता आचरण। समता रखने से दुःख दवा बन जाता है। वह दुःख को मिटाती है और कर्मों को भी काटती है। उससे नये कर्मों का आना भी रुक जाता है।

मेरी समता भावना के कारण मेरा दुःख अब औषध बन चुका है। वह मेरे दुःख को मिटा रहा है। वह मेरे कर्मों को काट रहा है, मेरे कर्म अब मेरे आत्मा से झड़ रहे हैं। मेरी आत्मा शुद्ध हो रही है। वे अपनी आत्मा से कर्मों को झड़ते हुए देखने की कल्पना करते हुए अनेक बार ध्यानस्थ हो जाते थे।

इस प्रकार अपने गृहस्थ जीवन में 1141 स्त्री-पुरुषों की हत्या करने वाले मुनि अर्जुनमाली ने अपने पापों के लिये पश्चात्ताप किया और अपने समता आचरण द्वारा उसी भव में कर्मों को काट कर मोक्ष प्राप्त किया। “धन्य है मुनि अर्जुनमाली, धन्य है उनका साधु जीवन, धन्य है उनकी पश्चात्ताप भावना, धन्य है उनका समता आचरण, धन्य है उनका ध्यान।” उनके आचरण का अनुमोदन और अनुसरण करने वाला परमात्म-पद का अधिकारी बन जाता है।

इस दृष्टि से प्राणी तीन प्रकार के होते हैं। प्रथम वे जो दुःख को दुःख मान कर दुःखी होते हैं और आर्तध्यान से भारी कर्मों का उपार्जन करके अपनी आत्मा का पतन कर लेते हैं। जैसे चक्रवर्ती की रानी श्रीदेवी अपने पति की मृत्यु पर छः मास तक विलाप करती है और छठे नरक में जाती है।

दूसरे वे जो मुनि अर्जुनमाली की भाँति अपने पापों का प्रायश्चित्त करते हैं, समता आचरण का पालन करते हैं, समता के कारण अपनी कल्पना में दुःख को दवा मान कर उससे अपने कर्मों को झड़ते हुए देखने का ध्यान करते हैं और कर्म-बंधन से मुक्त हो जाते हैं। यह मुक्ति दुःख-चेतना-मुक्ति से ही संभव होती है।

तीसरे वे जो अपने आत्म-ध्यान में, अपने ज्ञान-ध्यान में इतने लीन हैं कि उनके कानों में चाहे कीलें ठोकी जावें, उनके शरीर से चाहे चमड़ी उतारी जावे, उनके मुँह से आह तक नहीं निकलती, उनके चेहरे पर दुःखानुभूति का कोई चिन्ह दिखाई नहीं देता। संभव है कि उन्हें अपने ध्यान

में दुःख की अनुभूति ही नहीं होती होगी। वे दुःख-चेतना-मुक्त समता-आचरण के साक्षात् मूर्त रूप हैं।

भौतिक-सुख-चेतना भी प्राणी को समता विचार और समता आचरण से बहुत दूर ले जाती है। भौतिक-सुख-चेतना वाले प्राणी का अर्थ है—विषय-भोगों में मस्त, इन्द्रिय-सुखों में डूबा हुआ, सांसारिक-सुखों में आसक्त, मांस-मदिरा-कुशील-सेवन में लिप्त, सुख प्राप्ति हेतु आर्त-रौद्र-ध्यान करता हुआ और अनेक प्रकार के बुरे संकल्प-विकल्प करता हुआ, दूसरों के हित-अहित का ध्यान नहीं करने वाला, समता विचार और समता आचरण से शून्य प्राणी। जो मनुष्य भौतिक-सुख-चेतना में डूबा हुआ है और सांसारिक सुख-भोगों की इच्छा करता रहता है वह समता से बहुत दूर चला जाता है। समता आचरण के लिये आवश्यक है भौतिक-सुख-चेतना से मुक्ति और इन विषय-भोगों के संकल्पों-विकल्पों से भी मुक्ति, इन सभी बातों से उदासीनता।

कुछ अपवादों को छोड़कर प्राणी के अधिकांश अशुभ विचार और अशुभ काम प्रायः किसी-न-किसी प्रकार की अशुभ या अशुद्ध सुख-चेतना से ही होते हैं। आत्म-हत्या करने वाला भी शायद अपनी आत्म-हत्या से दूसरों को दुःखी बना कर स्वयं सुख पाने की कल्पना करता होगा। युद्ध में लड़ते हुए मरने वालों को अपनी वीरता दिखाने और वीर कहलाने के विचारों से उनके मन में सुख की अनुभूति होती होगी। कठोर अग्नितापस भी स्वयं को भयंकर ताप देकर महान तपस्वी कहलाने की भावना से या स्वर्ग-सुख पाने की आशा से सुख अनुभव करते होंगे। सुख की अनुभूति शरीर से कम और मन से अधिक होती है। यही कारण है कि लोग प्रायः मानसिक सुखानुभूति के लिये बड़े-बड़े कष्ट और खतरे उठाने के लिये तैयार हो जाते हैं।

सुख बाहरी पदार्थों में नहीं है। वह तो मन के भीतर विचारों से मिलता है। शत्रु के मुँह से गाली सुनने से क्रोध आता है किन्तु ससुराल में महिलाओं के मुँह से गीतों में गाली सुनने से क्रोध नहीं आता, क्रोध की जगह प्रसन्नता होती है। जिन कामों से एक समय में लोगों को सुख होता है उन्हीं कामों से दूसरे समय में उन्हीं लोगों को दुःख होता है।

मनोविज्ञान कहता है कि प्राणी यदि विषय-सुख-भोगों से होने वाले भावी दुःखों का चिन्तन करे, भौतिक सुखों को सुखाभास मानने लगे, उनसे अन्त में दुःख पाने वाले यादवों और कौरवों के ऐतिहासिक उदाहरणों का

में दुःख की अनुभूति ही नहीं होती होगी। वे दुःख-चेतना-मुक्त समता-आचरण के साक्षात् मूर्त रूप हैं।

भौतिक-सुख-चेतना भी प्राणी को समता विचार और समता आचरण से बहुत दूर ले जाती है। भौतिक-सुख-चेतना वाले प्राणी का अर्थ है—विषय-भोगों में मस्त, इन्द्रिय-सुखों में डूबा हुआ, सांसारिक-सुखों में आसक्त, मांस-मदिरा-कुशील-सेवन में लिप्त, सुख प्राप्ति हेतु आर्त-रौद्र-ध्यान करता हुआ और अनेक प्रकार के बुरे संकल्प-विकल्प करता हुआ, दूसरों के हित-अहित का ध्यान नहीं करने वाला, समता विचार और समता आचरण से शून्य प्राणी। जो मनुष्य भौतिक-सुख-चेतना में डूबा हुआ है और सांसारिक सुख-भोगों की इच्छा करता रहता है वह समता से बहुत दूर चला जाता है। समता आचरण के लिये आवश्यक है भौतिक-सुख-चेतना से मुक्ति और इन विषय-भोगों के संकल्पों-विकल्पों से भी मुक्ति, इन सभी बातों से उदासीनता।

कुछ अपवादों को छोड़कर प्राणी के अधिकांश अशुभ विचार और अशुभ काम प्रायः किसी-न-किसी प्रकार की अशुभ या अशुद्ध सुख-चेतना से ही होते हैं। आत्म-हत्या करने वाला भी शायद अपनी आत्म-हत्या से दूसरों को दुःखी बना कर स्वयं सुख पाने की कल्पना करता होगा। युद्ध में लड़ते हुए मरने वालों को अपनी वीरता दिखाने और वीर कहलाने के विचारों से उनके मन में सुख की अनुभूति होती होगी। कठोर अग्नितापस भी स्वयं को भयंकर ताप देकर महान तपस्वी कहलाने की भावना से या स्वर्ग-सुख पाने की आशा से सुख अनुभव करते होंगे। सुख की अनुभूति शरीर से कम और मन से अधिक होती है। यही कारण है कि लोग प्रायः मानसिक सुखानुभूति के लिये बड़े-बड़े कष्ट और खतरे उठाने के लिये तैयार हो जाते हैं।

सुख बाहरी पदार्थों में नहीं है। वह तो मन के भीतर विचारों से मिलता है। शत्रु के मुँह से गाली सुनने से क्रोध आता है किन्तु ससुराल में महिलाओं के मुँह से गीतों में गाली सुनने से क्रोध नहीं आता, क्रोध की जगह प्रसन्नता होती है। जिन कामों से एक समय में लोगों को सुख होता है उन्हीं कामों से दूसरे समय में उन्हीं लोगों को दुःख होता है।

मनोविज्ञान कहता है कि प्राणी यदि विषय-सुख-भोगों से होने वाले भावी दुःखों का चिन्तन करे, भौतिक सुखों को सुखाभास मानने लगे, उनसे अन्त में दुःख पाने वाले यादवों और कौरवों के ऐतिहासिक उदाहरणों का

हानि, आत्म-पतन, कुव्यसन, कुसंगति, संकट, इस जन्म में दुःख और अगले जन्म में दुर्गति।”

अन्य प्रकार की साधना के साथ-साथ उपर्युक्त सूत्रों को दोहराइये, मन की एकाग्रता से जप कीजिये। जप से पैदा होने वाली ध्वनि तरंगों की अजीब और अदृश्य शक्ति किसी भी गुण को स्थायी भाव बना कर प्राणी के आचरण में उतारने में समर्थ है। शुभ भावना से किया गया जप स्वाध्याय तप का अंग है।

7. राग-द्वेष

किसी प्राणी को अपना मानना या उसे अकारण ही बड़ा या अच्छा या धनवान आदि समझना राग है और किसी को शत्रु मानना या अकारण ही गरीब भिखारी आदि समझना द्वेष है। सद्भावना से किसी को अनिष्ट एवं पतन से बचाने के लिए आवश्यक कारणवश वस्तुस्थिति का निष्पक्ष भाव से अपनी जानकारी के अनुसार कथन करना राग द्वेष नहीं होता किन्तु अकारण किसी के संबंध में उसके अच्छा या बुरा होने का कथन करना राग द्वेष ही है।

प्राणी के बुद्धिमान या मूर्ख, बड़ा या छोटा, रंक या राव, भला या बुरा, सज्जन या दुर्जन, अपना या पराया, मित्र या शत्रु होने का विचार करना पर-द्रव्य का चिंतन है और राग-द्वेष है। प्राणी को मात्र प्राणी समझना, उसको मूलरूप में विशुद्ध आत्मा के रूप में देखना, उसे मात्र आत्मा मानना, वीतराग भाव है।

दुःख में दुःखी होना या सुख में फूलना राग-द्वेष है किन्तु दुःख में समता रखना, उसे समभाव से भोग लेना और सुख में आसक्त नहीं होना, उदासीन रहना, उससे होने वाले भावी दुःखों पर विचार शुरू कर देना राग-द्वेष-मुक्ति है।

8. कर्म बंध और क्षय

कर्म है प्राणी के द्वारा किये गये पुरुषार्थ के बदले में उसे मिलने वाला फल जिसे लोग दैव भाग्य या होनहार भी कहते हैं। संसार में एक प्रकार के अति सूक्ष्म कर्म-वर्गणा के पुद्गल भरे हुए हैं। जब-जब प्राणी के मन या वचन या काया या तीनों योगों से जरा भी हलन-चलन होती है तो ये पुद्गल प्राणी की ओर आकर्षित होते हैं, मन के अच्छे या बुरे विचारों के अनुसार अच्छे या बुरे संस्कार बनकर कर्म के रूप में आत्मा के साथ जुड़

जाते हैं और समय पर उदय में आकर अपना फल देते हैं। मन का प्रत्येक विचार या संकल्प-विकल्प कर्मों के बंधन का कारण बनता है और क्षय का कारण भी बनता है, विचारों में, ममत्व द्वेष, आर्तध्यान, रौद्रध्यान आसक्ति आदि से कर्मों का बंधन होता है और आत्म-भावना, समता भावना, अनासक्ति, अनुकम्पा, अनित्य भावना, अन्यत्व भावना आदि से कर्मों का क्षय होता है।

कर्मों के निम्नलिखित नियमों को ध्यान में रखना आवश्यक है—

1. जितने समय तक कोई विचार चलता है उतने समय तक मन के परिणामों के अनुसार कर्मों का आना, बंधना या क्षय होना चलता रहता है।

2. एक विचार यदि दस बार आता है तो कर्मों का आना या जाना भी दस बार होता है।

3. कर्म का बंधन क्षण भर में हो जाता है किन्तु उसका फल बहुत समय तक भोगना पड़ता है।

4. साधारणतया प्राणी एक दिन में जितने कर्म भोग कर साक्षात् करता है उससे बहुत अधिक कर्मों का बंधन वह एक ही दिन में कर लेता है।

5. कर्मों का बंधन होता है—सांसारिक कामों के संकल्प-विकल्प से। जैसे मैं यह काम करूँ ? या वह काम करूँ या कौनसा काम करूँ ? योजनाओं के बनते रहने से कर्मों के बंधन का काम चलता ही रहता है। किन्तु सकल्प-विकल्प से बचने वाला कर्म बंधन से बच जाता है।

6. कर्मों का बंधन होता है दुःख में दुःखी होने से और सुख में फूलने से। इनसे बचने वाला प्राणी कर्म बंधन से बच जाता है।

7. पूर्ण कषाय रहित भावना से काम करने वाला प्राणी कर्म के शक्ति को और अनुभाग बंध से बच जाता है। उसके कर्म फल दिये बिना ही दूर हो जाते हैं।

8. कर्म नष्ट होते हैं—मन के ज्ञान-धारा में लगने से। आत्मवाद एवं कर्मवाद का चिंतन, आत्म ध्यान में लीनता, तप के साथ धर्म चिंतन, अनित्यता भावना, अपन पापों का प्रायश्चित्त, दान शील तप भावना की अनुमोदना कर्मों को नष्ट करती है।

9. मोक्षीय कर्म सबसे प्रबल और भयंकर कर्म हैं। उसका क्षय होता है वैराग्य भावनाओं के चिंतन से।

10. वैराग्य भावना में संकृष्ट रसायन आने पर लाखों वर्षों के कर्मों का क्षय क्षण भर में दूर हो जाता है।

11. कोई प्राणी अपने बिना भोगे हुए नष्ट होने योग्य कर्मों को तप से नष्ट कर सकता है किन्तु दूसरों के कर्मों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

12. आचार और विचार में समता रखने से कर्म निर्जरा होती है।

मन के अशुभ विचारों से अशुभ कर्मों का बंधन होता है। जैसे—1. अशुभ संकल्प-विकल्प—यह काम करूँ ? वह काम करूँ ? कौनसा काम करूँ ? 2. दुःख की अनुभूति, 3. दुःख की अनुभूति से किये गये अशुभ विचार और अशुभ काम, 4. सुख की अनुभूति, 5. सुख की प्राप्ति हेतु या आसक्ति से किये गये बुरे विचार या बुरे काम, 6. दूसरों का बुरा सोचना या बुरा करना, 7. अशुभ कर्मों की अनुमोदना, 8. शुभ कामों की निन्दा, 9. समाचार-पत्र या कथा पढ़ते सुनते समय उत्तेजित होकर किसी को दंड देने या मारने की भावना करना और तन्दुल मत्स्य या कालसौरिक कसाई की भाँति जीवित भैंसों के नहीं मिलने पर अपने शरीर के मैल के भैंसे बनाकर उन्हें मारकर भाव हिंसा द्वारा नरक ले जाने वाले कर्म बंधन करना।

मन के शुभ परिणामों से शुभ कर्मों का बंधन होता है जो आत्म-हित-साधना में सहायक बनते हैं—

1. सद् भावनायुक्त कार्य—जिसमें चार बातें हों (क) दूसरे को सुख पहुँचाने का विचार हो, (ख) सुख के साथ-साथ उसका आत्म-हित भी जुड़ा हो, (ग) किन्तु उसको दुःख नहीं पहुँचे और (घ) उसका पतन भी नहीं हो।
नहीं दुःख हो, नहीं पतन हो

किन्तु सुख संग आत्मोन्नति हो॥

2. शुभ विचार करना और शुभ काम करना।

3. दान, शील, तप, शुद्ध भावना और अच्छे कामों की अनुमोदना करना।

निम्नलिखित उपायों से कर्मों का क्षय होता है—

1. सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप।
2. दान, शील, तप और शुद्ध भावना।
3. समता आचरण=दुःखानुभूति शून्यता, सुखानुभूति शून्यता और अशुभ संकल्प-विकल्प-मुक्ति।
4. कषाय (क्रोध-मान-माया-लोभ) मुक्ति।
5. ममत्व-मुक्ति से मरुदेवी माता को मोक्ष प्राप्त हुआ।
6. अहंकार मुक्ति से बाहुबलीजी को कैवल्य की प्राप्ति हुई।
7. अनित्य भावना से भरतजी को कैवल्यज्ञान प्राप्त हुआ।

8. पश्चात्ताप से चन्दडरुद्राचार्य को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।
9. पश्चात्ताप से कूरगडुक मुनि को कैवल्य प्राप्त हुआ।
10. पश्चात्ताप से प्रसन्नचन्द्र मुनि को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।
11. अनुमोदना—मुनि गजसुकुमाल आदि की समता की अनुमोदना, विजय सेठ और विजया सेठानी के आजीवन अखंडित शील पालन की अनुमोदना, सुमुख गाथापति के दान की अनुमोदना और जीर्ण सेठ के दान भावना की अनुमोदना तिराने वाली हैं।
12. “आत्म-भावना भावता, जीव लहे केवलज्ञान रे”—ऐसा श्रीमद् रायचन्द्रजी ने कहा है।

9. सत्य की शक्ति

“सच्चं खु भगवं” सत्य ही भगवान है। सत्यवादी को ईश्वर के और संसार की सभी शक्तियों के आशीर्वाद प्राप्त होते हैं। सत्यवादी स्वयं ही परमात्मा तुल्य है। सत्यवादी में देवताओं से भी अधिक शक्ति होती है।

आचार्यश्री जवाहरलालजी म.सा. का “हरिश्चन्द्र तारा” पृष्ठ 76 पर कथन है—“विश्वामित्र के तपबल से बंधी हुई अप्सराओं को महाराज हरिश्चन्द्र ने अपनी सत्य बल की शक्ति द्वारा बंधन मुक्त कर दिया। वे कहने लगी—“ऋषि का वह तप-बल जिसका प्रभाव मेटने में हम देवियाँ भी असफल रहीं, वह तप-बल हरिश्चन्द्र के सत्यबल से परास्त हो गया।” सत्य में देवताओं और तपस्वियों से भी अधिक बल होता है।”

आनन्द प्रवचन भाग नव पृष्ठ चार पर आचार्यश्री आनन्दऋषिजी म.सा. का कथन है—“सत्य से समुद्र में जहाज डूबता नहीं। सत्यवादी अग्नि में जलते नहीं, पहाड़ पर गिरने से मरते नहीं, युद्ध में बच जाते हैं, वध, वंद, अभियोग शत्रुता से भी मुक्ति पा लेते हैं। सत्य से आकृष्ट होकर देवता भी सत्यवादी की सेवा करते हैं। सत्य में हजार हाथियों का बल है।”

धर्मशास्त्रों में कहा गया है—“सत्यं चेत्तपसा च किं” अर्थात् सत्य में तप से अधिक सत्य है। “नास्ति सत्यात्परो धर्मः” अर्थात् सत्य से बड़ा कोई धर्म नहीं।

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप,
जाके हृदय सांच हैं, बाकें हृदय आप।।

10 शील की महिमा

“धन्य हैं, धन्य हैं आप दोनों। आपकी भक्ति करने से और आपको पारणा कराने से चौरासी हजार मुनियों की भक्ति करने और पारणा कराने

के बराबर फल होता है, ऐसा केवलज्ञानी मुनि विमल ने हमें बताया है। आप दोनों विवाहित होकर भी अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं। धन्य हैं आप, धन्य है आपका अखंडित ब्रह्मचर्य, धन्य है आप दोनों का जीवन।” विजय सेठ और विजया सेठानी की विनयपूर्वक स्तुति और भक्ति करते हुए, शील के महात्म्य को बताते हुए, दूर चम्पा नगरी से आये हुए, बारह व्रतधारी श्रावक श्रेष्ठी जिनदास ने सबके सामने रहस्योद्घाटन किया। इस रहस्य को और शील की महिमा की बात सुनकर वहाँ बहुत लोग एकत्रित हो गये। विजय सेठ के माता-पिता तो पौत्र देखने की आशा वर्षों से लगाये हुए थे। उन्हें क्या पता था कि उनके पुत्र ने शुक्ल पक्ष में अखण्ड शील पालन का और उनकी पुत्रवधू ने कृष्ण पक्ष में शील पालन का व्रत विवाह के पूर्व ही ले लिया था।

अखण्ड शील की बात प्रकट होने पर विजय सेठ और विजया सेठानी अपने पूर्व निश्चय के अनुसार दीक्षा लेकर मुनि विजय और साध्वी विजया बन गये और अपने कर्मों को क्षय करके उन्होंने परमात्म-पद प्राप्त कर लिया।

दोनों तरुण थे, सुन्दर थे, विवाहित थे, पति-पत्नी थे, रात्रि में एक कमरे में एक ही पलंग पर सोते थे। आध्यात्मिक वार्तालाप भी करते थे किन्तु काम-वासना उन्हें छू भी नहीं सकी। ऐसे दम्पति की भक्ति से चौरासी हजार मुनियों की भक्ति का लाभ हो तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ? मुनि विजय और साध्वी विजया ने अपने आजीवन अखंडित शील-पालन और संयम से मोक्ष प्राप्त किया।

1. विजय सेठ और विजया सेठानी के शील-पालन की अद्भुत घटना और इसके महात्म्य की बात सुनने से प्राणी के मन में शील-पालन की शुद्ध भावना का जन्म होता है।

2. इस घटना का गुणगान और अनुमोदन करने से उत्पन्न होने वाली भाव-तरंगों से उस शील-भावना का पोषण और उसकी वृद्धि होती है।

3. अपनी भौतिक आँखें बंद करके कल्पना द्वारा उस घटना की काल्पनिक चित्रावली का ध्यान करने से प्राणी का मन शील-भावना पर एकाग्र हो जाता है। मन में इतनी शक्ति नहीं है कि वह आँखों को या कान को छोड़कर दूसरी जगह चला जावे।

4. शीलव्रत के महात्म्य का जप करने से मौन जप से उत्पन्न होने वाली आंतरिक ध्वनि-तरंगें शील-भावना को मजबूत बनाती हैं।

में वह सकता है, उसे कीड़े खा सकता है। चोरी, ठगी या धोखा भी हो सकता है।

यदि प्राणी के अन्तराय कर्म या अशुभ कर्म का उदय है तो उसे किसी भी पुरुषार्थ से धन और सुख मिलने वाला नहीं है। यदि शुभ कर्म का उदय है तो वर्तमान में किसी भी पुरुषार्थ के नहीं बनने पर भी केवल पूर्व-कृत शुभ पुरुषार्थ से संचित पुण्य के उदय से धन और सुख की वर्षा भी हो सकती है। शालिभद्रजी के साथ ऐसा ही हुआ। सेठ सुदर्शन ने सूली से रक्षा के लिये कुछ भी नहीं किया, किन्तु देवों ने सूली का सिंहासन बना दिया। भगवान् पार्श्वनाथ की रक्षा भी केवल निमित्तों द्वारा हुई। प्रह्लाद की अग्नि से रक्षा हुई।

कभी-कभी वर्तमान काल के पुरुषार्थ के बिना और किसी भी सहायक निमित्त के बिना भी प्राणी के किसी पूर्व-संचित पुण्य से उसका काम बन जाता है, उसकी रक्षा हो जाती है। जैसे गोशालक की तेजोलेश्या से भगवान् महावीर की रक्षा हुई। अर्जुनमाली के मुद्गर से सेठ सुदर्शन की रक्षा हुई। बेहोशी की दशा में नदी में बहाये गये भीम की सर्प-दंशों द्वारा मृत्यु न होकर रक्षा होना पूर्व-संचित पुण्य का ही तो फल है।

यह केवल भ्रम है कि वर्तमान अशुभ खोटे धंधों से अधिक धन और सुख मिलता है। शुभ कर्म के उदय में साधारण शुभ पुरुषार्थ से ही धन और सुख मिल सकता है। खोटे धंधों से आने वाला धन समय आने पर दुःख का ही कारण बनेगा।

जिस महान् पुण्योदय से आपको मानव देह मिली है, अच्छा कुल, अच्छा धर्म, त्यागी धर्म-गुरु और प्रायः सभी साधन मिले हैं उसी पुण्य से आपका जीवन-निर्वाह हो सकेगा—इस बात पर पूर्ण श्रद्धा रखते हुए, नीति-मार्ग पर चलते हुए, विचारों में समता और आचरण में समता रखते हुए, मानव-जीवन के मूल लक्ष्य, परमात्म-पद की प्राप्ति की ओर आगे बढ़िये।

12. अमृत-बिन्दु

यह विचार कि मैं किसी प्राणी की या समाज की सेवा कर रहा हूँ—शायद हृदय के किसी कोने में छिपे हुए अहंकार ने भेजा है और यह विचार कि मैं दूसरों के परिश्रम और कृपा से ही बना हूँ, मुझे उनकी सेवा द्वारा उनके ऋण से मुक्त बनना चाहिये—विनय के आगमन की सूचना है।

कषाय - मुक्ति एक विवेचन

भाग - 2

अन्तिम और अन्तरिम लक्ष्य

जीवन का अंतिम लक्ष्य है—आत्म शुद्धि, आत्मा के सिद्ध स्वरूप की प्राप्ति और अन्तरिम लक्ष्य है—कषाय आदि अवगुणों की निवृत्ति।

हम अनादि अनंत काल से विषय विकारों में फंसे हुए हैं और इतने मुग्ध हो चुके हैं कि हमें इनसे निवृत्त होने का विचार भी नहीं आता। यदि कभी किसी दुर्घटना या किसी के उपदेश से विरक्ति का क्षणिक विचार आता भी है, तो वह क्षण भर ठहर कर कपूर की भाँति उड़ जाता है। इसके दो कारण हैं—प्रथम, हमारे विचारों में विषय विकारों में सुख प्राप्ति का दिखाई देना। और दूसरा, इन भोगों में लम्बा अनंत काल का हमारा इन्हें भोगते रहने का अभ्यास।

इन गलत विचारों में परिवर्तन लाने और सुधार करने के लिए प्रथम निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं—

(क) धार्मिक एवं सत्साहित्य का अध्ययन, आध्यात्मिक पुस्तकों का स्वाध्याय, सत्संगति, संत वाणी का श्रवण आदि।

(ख) अपने अवगुणों का अवलोकन, उनकी सूची बनाना, उन दुष्कर्मों के लिए पश्चात्ताप करना एवं दंड प्रायश्चित्त लेना।

(ग) उन अवगुणों को छोड़ने के लिए कुछ उपायों का विचार करना, संकल्प करना, उन संकल्पों को दिन रात अधिक से अधिक बार दोहराते रहना ।

(घ) अपनी आत्मा को निर्देश देने के लिए चुने हुए सिद्धांतों को संक्षिप्त वाक्य या सूत्र रूप में लिख लेना, उनका जप करना एवं उनके अर्थ पर विस्तारपूर्वक चिंतन करना।

(ङ) इतिहास, साहित्य, अपने पड़ोसियों के एवं अपने जीवन में आई हुई दुर्घटनाओं पर चिंतन करके उन विचारों एवं सिद्धांतों पर अपनी श्रद्धा को दृढ़ करना जिससे वे चेतन मन से अवचेतन मन में उतर कर स्थायी भाव बना सकें।

अवगुणों को छोड़ने के लिए दूसरा उपाय है—दीर्घ अभ्यास। अभ्यास का अर्थ है—जीवन में घटने वाली घटनाओं में उन सिद्धांतों को लागू करना। जैसे क्रोध जीतने का अभ्यास करने वाला किसी घटना पर जो उसे बुरी लगे उस पर क्रोध नहीं करे और यह विचार करे—“यह कष्ट तो मेरे पूर्वकृत कर्मों का ही फल है। इस पर समता रखने से ही मेरा यह कर्म नष्ट होगा। यह दुःख तो मेरे कर्मरोग की दवा है, चिकित्सा है। इस दवा को समतापूर्वक पीना है। अपने मन को इन विचारों में या अन्य विचारों में लगाता हुआ क्रोध से बचने का उपाय करे। प्रत्येक क्रोध पैदा करने वाली घटना के समय समता रखने का अभ्यास करे। दीर्घकाल के अभ्यास से क्रोध पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

आजकल मानिसक तनाव को दूर करने एवं जीवन के अंतिम लक्ष्य निर्विकार दशा एवं परमानंद की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार की साधना एवं ध्यान किये जाते हैं, जैसे एक बिंदु या पदार्थ पर दृष्टि जमाकर त्राटक ध्यान द्वारा मनोविजय पाना। विपश्यान ध्यान, नासाग्र पर दृष्टि जमाना, श्वास या शरीर-तंत्र-प्रेक्षा, शरीर के किसी शक्ति-केन्द्र को जागृत करना। ये सब प्रयास मन को वश में करने के लिए किये जाते हैं। ये केवल साधन हैं—मन को वश में करने के।

हमारे जीवन का लक्ष्य है—कषाय-मुक्त होना, जिसमें प्रथम स्थान है क्रोध का। क्रोध एक ऐसा दुर्गुण है जो बड़े-बड़े तपस्वियों और साधकों को भी आसानी से नहीं छोड़ता। अतः अपना समय अन्य साधनों की बजाय सीधा क्रोध की निवृत्ति की साधना में लगाना ज्यादा उपादेय रहेगा। दूसरों के द्वारा दिये गये कष्ट को दुःख नहीं मानकर कर्म काटने की औषधि मानने की साधना से क्रोध निवृत्ति और समता की प्राप्ति हो सकेगी।

जब हम कष्ट में समता रखकर उसे दवा मान लें और निमित्त बनने वाले को परम उपकारी, अपना हितैषी और क्रोध रोग काटने की दवा देने वाला चिकित्सक मान लें और 24 घंटे इसका चिंतन-मनन-स्मरण करें, इसे क्षण भर भी नहीं भूलें, तो क्या हमारा क्रोध समाप्त नहीं होगा ?

क्रोध निवृत्ति की साधना

जैनागमों में चार प्रकार का क्रोध बताया गया है। प्रथम है अनन्तानुबंधी क्रोध जो पत्थर की तेड़ के समान है। यह क्रोध की तीव्रतम दशा है, जो जीवन भर नहीं मिटती। इससे नरक गति की प्राप्ति होती है और मनुष्य कभी सुखी नहीं बनता।

दूसरा है अप्रत्याख्यानी क्रोध जो सूखे हुए तालाब में बनी हुई दरार के समान है। यह भी क्रोध की तीव्र दशा है जो वर्ष भर नहीं मिटती। इससे प्राणी को तिर्यच (पशु-पक्षी) की गति की प्राप्ति होती है। यह भी दुःखदायी है।

तीसरा है प्रत्याख्यानी क्रोध। यह गाड़ी के जाने से रेत में बनी लकीर के समान है और स्वयं ही मिट जाती है। यह क्रोध की मंद दशा है, जिससे प्राणी को मनुष्य गति की प्राप्ति होती है।

चौथा है संज्वलन क्रोध जो पानी में बनी लकीर के समान है। यह क्रोध की मंदतम दशा है, जिसमें प्राणी का देवगति का बंध होता है। क्रोध जितना ही कम होगा, आत्मा पर कर्मों का उतना ही कम बंध बनेगा और आत्मा के उत्थान की उतनी ही अधिक संभावना होगी।

अच्छा यह रहेगा कि हम सर्वप्रथम क्रोध-निवृत्ति की साधना से प्रारंभ करें। इससे हमारा सारा ध्यान एक ही दुर्गुण की निवृत्ति की ओर लगेगा जिससे सफलता जल्दी मिलेगी।

मनुष्य का एक प्रबल अवगुण है—क्रोध। इसके संबंध में कहा जाता है कि जिसने क्रोध को जीत लिया, उसने अपने जीवन की तीन चौथाई साधना पूर्ण करली। देखने में भी आता है कि कुछ बड़े-बड़े विद्वान् पंडित तपस्वी, संत महात्मा भी समय पर इसके शिकार होने से नहीं बच पाते। क्रोध आने पर प्राणी अपना आपा भूल जाता है और क्रोध में ऐसा भयंकर अनर्थ कर बैठता है कि जन्म भर उसके दुःखद परिणाम को भोगना पड़ता है। क्रोध अनेक शत्रुओं को पैदा कर देता है और प्राणी जीवन भर भय, चिंता, संघर्ष और झगड़ों में फंसा रहता है।

क्रोध आने के कई कारण हैं। जब प्राणी की इच्छापूर्ति में कोई बाधक बनता है तब बाधक पर क्रोध आता है। प्राणी की इच्छा होती है सुख भोगना, दुःख से भागना, किसी को मारना, किसी को तारना, आराम करना, अपना काम करना, धन-संग्रह करना। इनमें बाधा देने वाले पर क्रोध आता है। यदि कोई व्यक्ति हमारा अपमान करता है या हमें कड़वी बात कहता है तब भी हमें क्रोध आ जाता है। अतः हमें हमेशा सजग रहना चाहिए कि हम कोई ऐसा काम नहीं करें जिससे अनावश्यक रूप में झगड़ा बढ़े।

क्रोध आने पर प्राणी साधारणतया तीन प्रकार के कार्य करता है। प्रथम—पदार्थों की तोड़-फोड़ करता है। दूसरे—सामने वाले प्रतिपक्षी को गाली देना, उसे पीटना, धोखा देना, उसकी हत्या करना आदि में लग सकता है। तीसरे—वह स्वयं भुखा रहने, घर से भागने, अपने शरीर को चोट

पहुँचाने, या आत्म-हत्या करने के कार्य में लग सकता है। ये सभी त्यागने योग्य हैं। हमें सजग रहकर इससे बचना चाहिए।

क्रोध से रोगोत्पत्ति, धन-हानि, मान-हानि एवं अनेक प्रकार के संघर्ष एवं दुःख हो जाते हैं। क्रोध करने वालों ने हमेशा दुःख ही उठाया है। जैसे—कौरव, कर्ण, रावण।

क्रोध निवृत्ति से स्वास्थ्य, धन, मान, सुख एवं परमात्म-पद की प्राप्ति होती है। इसके उदाहरण हैं—मुनि गजसुकुमाल, मुनि-मैतार्य, मुनि उदाई, मुनि अर्जुनमाली, मुनि स्कंदक और वे पाँच सौ नव दीक्षित नव-युवक संत जिन्हें पालक ने घाणी में पिलवा दिया था। इन संतों की मृत्यु घटनाओं की कथा का श्रवण, अध्ययन, इसके समता-भाव का अनुमोदन, इनसे प्रमोद भावना का आना और इन्हें बार-बार भावपूर्वक भाववंदन करना क्रोध का नाश करता है। इससे कर्मों की निर्जरा, आत्मा की शुद्धि और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

क्रोध के समय प्राणी उसे दुःख देने वाले व्यक्ति के कामों में दोष ढूँढ़ने, उसके अपराधी होने के प्रमाण पाने, उसे दंड देने, धोखा देने, हानि पहुँचाने, नीचा दिखाने और उससे बदला लेने की योजना बनाने आदि में लग जाता है। प्राणी को सजग होकर इन बातों से बचना चाहिए।

क्रोध से बचने के लिए सर्वप्रथम कर्म सिद्धांत का अध्ययन एवं उसमें गहरी श्रद्धा बनाना आवश्यक है। उसे यह समझना एवं मानना चाहिए कि संसार का कोई भी प्राणी निश्चय में किसी दूसरे प्राणी को अर्थात् मुझे सुख या दुःख नहीं दे सकता। मुझे जो दुःख मिल रहा है वह मेरे ही किए हुए दुष्कर्मों का फल है। दूसरा प्राणी तो केवल निमित्त ही बन सकता है। मैं मेरे दुष्कर्मों के उदय से आये हुए इस दुःख या कष्ट से बच नहीं सकता। अतः मुझे पूर्ण समताभाव रखकर इस आये हुए कष्ट को कर्म-रोग के काटने की दवा समझकर समतापूर्वक पी लेना चाहिए। यह मेरे कर्म-रोग की चिकित्सा हो रही है। मेरे अशुभ कर्मों की निर्जरा हो रही है। मेरे आत्मा की शुद्धि हो रही है। और संभव है मुझे मुक्ति की प्राप्ति भी हो जावे।

यह प्राणी जो मेरे इस कष्ट में निमित्त बना है, जो मुझे शत्रु दिख रहा है, वह न तो मेरे लिए बुरा है और न मेरा शत्रु ही है। वह मेरा हितैषी और परम उपकारी है। मेरे कर्म-रोग की चिकित्सा के लिए डॉक्टर बनकर आया है। मुनि गजसुकुमाल, मुनि खंदक आदि ऐसा चिंतन करके क्रोध-निवृत्त हुए और वे संसार भ्रमण से मुक्त बने।

में केवल एक घंटे ध्यान साधना करना और 23 घंटे आर्त-रौद्र ध्यान करना और अवगुणों का अभ्यास करना कुछ-कुछ ऐसा ही लगता है जैसे 24 घंटों में एक रुपया कमाना और 23 रुपये खर्च करना। अतः शीघ्र सफलता के लिये एक घंटे के नियमित समय के एकावधान के अतिरिक्त जब-जब भी समय मिल सके, तब-तब दिन में कई बार अपने लक्ष्य का चिंतन एवं स्मरण करते रहना चाहिये। उठते-बैठते, सोते-जागते हर समय अपना लक्ष्य अपनी स्मृति में रहना चाहिये, तभी सफलता मिलेगी।

ध्यान में एक ही विषय पर एकावधानता का होना आवश्यक है किन्तु ध्यान के उसी विषय में विषयांतर होना ध्यान में बाधक नहीं, किन्तु साधक है। जैसे क्रोध निवृत्ति के ध्यान में—क्रोध क्या है ? उसके कितने भेद हैं ? उसके कारण क्या-क्या हो सकते हैं ? उसमें प्राणी क्या-क्या विचार करता है और क्या-क्या अनर्थकारी काम करता है ? उससे होने वाली हानि क्या है ? उसकी निवृत्ति से क्या-क्या लाभ होते हैं ? उनके उदाहरणों पर भी विचार किया जावे। क्रोध निवृत्ति के भिन्न-भिन्न क्या-क्या उपाय हैं ? उनका ध्यान, चिंतन-मनन भी आवश्यक, उपादेय और साधना में साधक है। इसे विषय में विषयान्तर होना कहा जा सकता है किन्तु यह कार्य मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मन की थकान को दूर करने वाला और उसे अधिक सक्रिय बनाने वाला है। इससे विचारों में पूर्णता एवं दृढ़ता आती है। ऐसा ध्यान सहज-ध्यान या सहज-योग कहा जा सकता है।

क्रोध से बचने का साधारण उपाय—क्रोध आने की जहाँ घटना हो रही है, वहाँ से उठ कर दूसरी जगह चले जाना, ठंडा पानी पी लेना, कोई कहानी पढ़ने में लग जाना या किसी दिलचस्पी वाले काम में लग जाना।

क्रोध पर विजय पाने का दूसरा उपाय—इसके दो सूत्रों का दिन में कई बार कुछ महीनों तक प्रति दिन जप करना अर्थात् उन्हें दोहराते रहना और उनके अर्थ का चिंतन करते रहना। वे दो सूत्र ये हैं—(क) दुःख में समता रखूंगा यह दुःख कर्म-रोग काटने की दवा है। (ख) दुःख में निमित्त बनने वाला मुझे कर्म-रोग काटने की दवा देने वाला डॉक्टर है।

क्रोध जीतने का तीसरा उपाय है कि चार प्रकार के अभ्यास किये जावें। प्रथम अभ्यास है—भूतकाल की क्रोध की एक घटना को याद करके उसके लिये पश्चात्ताप किया जावे और कुछ दंड प्रायश्चित्त लिया जावे। जैसे दो दिन मिठाई छोड़ना, नमक छोड़ना, कुछ दान देना, उपवास या एकत करना। इसके साथ ही कल्पना द्वारा उस घटना में अपने आचरण

सुनते हैं तो मन में एक प्रकार की विचित्र संतुष्टि की हलकी-सी लहर पैदा हो जाती है मानो मुझे कुछ प्राप्ति हो गयी है। “मैं उस व्यक्ति से कुछ ऊपर उठ गया हूँ। वह मेरे सामने सिर उठाने, बोलने लायक नहीं रहा। उसका यह पतन बुरा होते हुए भी मेरे लिए तो अच्छा ही है। मैंने तो उसका पतन नहीं कराया। मैं तो निर्दोष हूँ। किन्तु मेरे मन लायक बात हो गयी।” कभी-कभी इससे हमें विचित्र सुख जैसा कुछ अनुभव होने लगता है। यह भावना ऊपर से दुष्कर्म नहीं दिखते हुए भी गहराई में भयंकर भाव दुष्कर्म है। लोग चाहे इसे दुष्कर्म नहीं मानें, किन्तु यह महान दुष्कर्म है और उस प्राणी के आध्यात्मिक विकास को रोक देता है।

जो अनुभवहीन हैं उनकी दुर्भावना प्रकट हो जाती है और जो इससे भी नीचे स्तर वाले लोग हैं, वे ऐसी घटनाओं पर अपनी प्रसन्नता को मिटाई वॉटकर भी प्रकट करते रहते हैं। दूसरों के संकट या पतन में खुश होना केवल अपने लिए अनावश्यक भयंकर अशुभ कर्मों का बंध करना है। अतः प्राणी को हमेशा दुर्भावना से बचना चाहिए और दूसरों के लिए शुभ भावना भाकर अपना आध्यात्मिक विकास करना चाहिए।

जो प्राणी दुर्भावना से भरा हुआ है उसके लिए विकास और साधना के सभी दरवाजे बंद हो जाते हैं। वह किसी का कुछ भी बुरा नहीं करता हुआ भी तन्दुल मत्स्य की भाँति सातवीं नरक के आयुष्य का बंध कर लेता है। तन्दुल मत्स्य एक छोटा-सा चावल के दाने जितना मत्स्य होता है। वह बड़े-बड़े मत्स्य के भौंह पर बैठा रहता है। बड़ा मत्स्य मुँह खोले हुए पड़ा रहता है। अनेक मछलियाँ जल प्रवाह के साथ उसके मुँह में जाती हैं और सुरक्षित ही खेलती हुई उसके मुँह से बाहर निकल जाती हैं। वह चावल जितना छोटा तन्दुल मत्स्य सोचता है—“यदि मैं इस बड़े मत्स्य की जगह होता तो एक भी मछली को मुँह में आने के बाद बाहर नहीं निकलने देता।” वह खाता तो एक भी मछली को नहीं है, किन्तु केवल दुर्भावना के कारण ही सातवीं नरक जाता है।

दुर्भावना का दूसरा रूप है दूसरों को दुःख देने का विचार करना। ऐसा प्राणी केवल भाव-हिंसा से ही महान भयंकर नरक के आयुष्य का बंध कर लेता है। दुर्भावना से बचने और भावना को शुभ एवं शुद्ध बनाने के लिये बार-बार दोहराइये—

सबका भला हो, सबका भला हो, सबका भला हो।

परिवार-मोह-ममता की निवृत्ति

प्राणी की तीसरी प्रबल कमजोरी है—परिवार की मोह-ममता। एक ही परिवार में, सास-बहुओं में, देवरानी-जेठानी में, ननद-भौजाई में, देवर-भौजाई में तो भेदभाव और अलगाव का होना अस्वाभाविक नहीं भी हो सकता है क्योंकि वे अलग-अलग माताओं की संतानें हैं किन्तु एक ही माता की संतानों में, बहन-भाइयों में, भाई-भाई में, पुत्र की शादी के बाद माता-पुत्र में और पिता-पुत्र में भी कभी-कभी भयंकर अलगाव और संघर्ष पैदा हो जाता है। फिर भी लोग परिवार के मोह में फंसकर आत्म-कल्याण और न्याय की बात पर विचार नहीं करते। इस संबंध में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से विचार करना आवश्यक है।

प्रथम दृष्टिकोण है—आत्म-स्थिति का। इस दृष्टिकोण से सभी प्राणी अलग-अलग हैं। सबकी आत्माएँ, शरीर, विचार, स्वार्थ आदि अलग-अलग हैं।

दूसरा दृष्टिकोण है—कर्म-फल-भोग का। एक ही परिवार में एक हँसता है, दूसरा रोता है। एक भरपेट स्वादिष्ट पौष्टिक भोजन करता है, दूसरा भूखों मरता है। एक स्वस्थ है, दूसरा रोगों से पीड़ित पड़ा हुआ कराह रहा है। एक अमीर है, दूसरा गरीब है। एक स्वामी है, दूसरा सेवक है। एक पंडित और बुद्धिमान है, दूसरा अशिक्षित और मूर्ख है। एक सुखी है, दूसरा दुःखी है। कोई किसी को अपना पुण्य, अपनी आयु, अपना सुख दे नहीं सकता और दूसरे का पाप, उसकी मौत, उसका दुःख ले नहीं सकता। फिर दोनों का एक ही परिवार में होना या दो परिवारों में होना समान-सा ही है। परिवार में सब अलग-अलग हैं। कोई किसी का नहीं होता।

तीसरा दृष्टिकोण—पूर्व जन्मों के कर्म विपाकों से, राग-द्वेष से जुड़ी हुई आत्माएँ पिता-पुत्र, पति-पत्नी आदि के भिन्न-भिन्न रूप धर कर, परिवार में आती हैं और परिवार वालों के कर्म-फल प्राप्ति में सिर्फ निमित्त बनकर अपना पुराना कर्ज चुकाती हुई या दिया हुआ कर्ज वसूल करती हुई या बदला लेती या देती हुई नाटक के पात्रों की तरह अलग-अलग चली जाती हैं।

चौथा—प्राणी कर्म रूपी मदारी के हाथ में वंदर या रीछ की भाँति नाच दिखाता हुआ, अपना कर्म-फल भोगता हुआ, परिवार में रहता हुआ भी एक अपेक्षा से सबसे अलग ही है।

पाँचवां—यह जीवन एक यात्रा है और सभी प्राणी यात्री से अधिक कुछ भी नहीं हैं। परिवार केवल यात्रियों का झुंड है। यात्रियों में कोई किसी का “अपना” नहीं होता।

छटा—सभी प्राणी एक दूसरे के लिए निमित्त से अधिक कुछ नहीं है। निमित्त को “अपना” समझना और उस पर मोह करना भूल है।

सातवां—प्राणी ने मनुष्यों, देवों, तिर्यचों के अनेक परिवारों में अनेक बार जन्म लिया है। वह किस परिवार को अपना परिवार माने ? वह उन्हें पहचान भी नहीं सकता।

आठवां—एक महिला पीहर को अपना परिवार माने या ससुराल को ? जिस महिला ने दो-तीन बार तलाक दिया है वह अपना परिवार किसे समझे। पीहर को या प्रथम ससुराल को या दूसरी ससुराल को या तीसरी ससुराल को ? एक मनुष्य के कई पत्नियाँ हैं। क्या आने वाले भविष्य के जन्म में भी यह परिवार कायम रहेगा ? राजा सगर के साठ हजार पुत्र बताये गये हैं और कौरव सौ भाई थे। क्या भविष्य में भी ये परिवार ऐसे ही परिवार बने रहे थे या सब अलग-अलग हो गये थे ?

नवां—मनुष्यों के कर्म, मन के विचार और भावनाएँ अलग-अलग होती हैं। वे मर कर अलग-अलग गतियों में अलग-अलग परिवारों में जाते हैं। अतः परिवार किसी का स्थायी नहीं रहता, वे हमेशा बदलते रहते हैं।

दसवां—एक प्राणी की दसवीं पीढ़ी में उसके सैकड़ों परिवार बन जाते हैं। वह किसे अपना परिवार माने ? किसमें जन्म ले ?

ग्यारहवां—यदि परिवार में सब अपने ही अपने होते तो “अपनों” में अलगाव, मन-मुटाव, शत्रुता और बदला लेने की भावना क्यों रहती है ? सुग्रीव-बालि, कर्ण-अर्जुन, कौरव-पांडव, रावण-विभीषण, उग्रसेन-कंस, हिरणकश्यप-प्रह्लाद आदि इस बात के प्रमाण हैं कि परिवार में शत्रु भी जन्म लेते हैं। परिवार के सभी सदस्य आपस में “अपने” नहीं होते। संसार में कोई किसी का “अपना” नहीं होता। प्राणी को अकेले से दुकेला तो उसके कर्म ही बनाते हैं।

बारहवां—प्राणी की सबसे बड़ी चाह है सुख की प्राप्ति। किन्तु वह भूलता है कि हमारे सुख में निमित्त बनना भी परिवार के हाथ में नहीं है। सुख-सुविधा की प्राप्ति होती है शुभ कर्मों से, पुण्योदय से। हमें सुख देना किसी अन्य प्राणी या हमारे परिवार के हाथ में नहीं है। हमें पर-कृत या परिवार-कृत का फल नहीं मिल सकता। इस ज्ञान में दृढ़ श्रद्धा का उत्पन्न होना ही परिवार-ममता-मोह को दूर करता है। याद रखिये—“पर-कृत या परिवार-कृत कर्म का फल हमें नहीं मिल सकता, परिवार बेचारा क्या करे ?”

अनेक संघर्ष और अनर्थ करता है। ये सब दुःख से दुःखी होने के विचार के कारण होते हैं। यदि प्राणी उसे दुःख नहीं मानकर उसे अपने कर्मों का फल माने, उसमें समभाव रखे, उसे कर्म-रोग काटने की दवा माने और उसे हँसते-हँसते पी ले अर्थात् सहन करले, उससे कुछ शिक्षा ग्रहण करे तो वह दुःख भूल में पड़ जाता है। विचार धारा दूसरी ओर चली जाती है और दुःख दुःख नहीं रहता, वह समता के कारण दुःख और कर्म काटने की दवा बन जाता है।

दुःख पदार्थ या परिस्थिति में नहीं रहता, वह विचारों के कारण पैदा होता है, जिस भूख और कष्ट में साधारण लोग दुःख मानते हैं उसी भूख और कष्ट में तपस्वी सुख मानते हैं। भूख में जो भोजन मीठा लगता है वही मीठा भोजन पेट अधिक भर जाने पर दुःखद लगने लगता है। शत्रु द्वारा जिस गाली को सुनकर प्राणी को दुःख होता है और क्रोध आता है, ससुराल में गीतों में उसी गाली को सुनकर उसे प्रसन्नता होती है। यह सब विचारों से होता है। यदि प्राणी अपनी विरक्त विचार धारा को दृढ़ करे और कष्ट को सहर्ष सहने का अभ्यास करता रहे तो उसे दुःख चेतना से बचने के लिए कोई कठिनाई नहीं होगी। वह अनेक प्रकार के कष्टों और कर्म बंधनों से बच जावेगा।

चक्रवर्ती की पटरानी श्रीदेवी पति-वियोग में छः महीने विलाप करती है और वह छठे नरक में जाती है। अतः दुःख चेतना से बचना चाहिये।

दुःख चेतना में प्राणी अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प करता है, आरम्भ-समारम्भ की योजनाएँ बनाता है, शत्रु से बदला लेने के भावों में अशुभ विचार धारा में बहता चला जाता है और विचारों के प्रवाह में ही भयंकर कर्मों के बंधन करके नरक में चला जाता है। दुःख चेतना से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है। यदि किसी भी परिस्थिति में प्राणी दुःख को दुःख नहीं माने, दुःखी नहीं होवे, उसे कर्मों का फल माने और समता रखे तो वह मोक्ष प्राप्ति के मार्ग का यात्री बन जाता है। उसके लिये मोक्ष का मार्ग सरल और सुगम बन जाता है।

सुख चेतना-निवृत्ति

अनुकूल परिस्थिति में, भौतिक सुख भोगों में, सुख अनुभव करना सुख चेतना है। राज्य सत्ता पाने पर, धन-सम्पत्ति एवं भोगों की प्राप्ति होने पर, मद्य-मांसादि में, जुआ व्यभिचार आदि में, प्राणी सुख अनुभव करता है। मांसाहारी पशुओं का शिकार करने में, अंडे आदि के भक्षण में सुख मानता है। यह सुख चेतना है। कुछ व्यक्ति दूसरों को दुःख देने में, लड़ाने-भिड़ाने

सुख वास्तव में है त्याग में, प्राप्त पदार्थों और आये हुए सुखों को दूसरों को देने में। अपना तो अपनी आत्मा के सिवाय कुछ भी नहीं है। संसार के सभी पदार्थ पराये हैं, दूसरों की धरोहर है। इस धरोहर को संभालने में नहीं, किन्तु लौटाने में ही सच्ची स्वतंत्रता और सुख है। इसे रखना तो परतंत्रता है, चौकीदारी है, बंधन है, भय और चिंता को गले लगाना है। सच्चा सुखी वही है जो दुःखियों के दुःख को दूर करे और सुखियों के सुख को देखकर प्रसन्नता अनुभव करे। “सच्चा सुख है इच्छा-निवृत्ति में, परिग्रह त्याग में, धरोहर लौटाने में।”

प्राणी जो भी काम करता है वह चाहे कुछ भी हो, उसका अन्तिम मूल लक्ष्य होता है—भविष्य में सुख प्राप्ति की आशा। और सुख प्राप्ति का माध्यम है शरीर, इन्द्रियाँ और मन। अतः सुख चेतना-निवृत्ति के लिये आवश्यक है देह की आसक्ति से निवृत्ति।

देहासक्ति छोड़ने का प्रथम सूत्र है—

यह शरीर मेरा नहीं है, यह नाशवान है

इसके जाने से मेरा कुछ भी नहीं जाता।

दूसरा सूत्र है—

खणमेत सोक्खा, बहुकाल दुक्खा।

क्षणभर का सुख बहुत समय तक दुःख देता है।

कभी-कभी इस शरीर में इतने भयंकर वेदना वाले रोग एक ही साथ पैदा हो जाते हैं कि प्राणी का सुख से जीना कठिन हो जाता है। कैंसर, आँतड़ियों में घाव, पैर की हड्डी का टूट जाना आदि प्राणी को सुख से नहीं जीने देते। “यह शरीर दुःखों की खान है।” शरीर की आसक्ति छूटने से सुख-चेतना छूट सकती है।

इच्छा-निवृत्ति

इच्छा भी मानव की बड़ी कमजोरी है। इच्छा ही संसार है, यही बंधन है। यही सब योजनाओं, दुर्भावनाओं, अवगुणों, दुःखों, कष्टों, संघर्षों एवं युद्धों का कारण है। यदि इच्छा समाप्त हो जाती है तो उस प्राणी के लिए संसार भी नहीं रहता, विषय वासनाएँ नहीं रहती, वह पूर्ण पुरुष बन जाता है।

इच्छा साधारणतया पाँच प्रकार की होती है—1. दुःखों से भागने की, 2. सुख भोगने की, 3. शत्रुओं को मारने पीटने की, 4. अपने प्रियजनों को तारने, सुधारने एवं सुख देने की और 5. धर्म पालन द्वारा अपना भविष्य सुधारने की।

यह ध्यान रखने की बात है कि इच्छाएँ आकाश के समान अनंत हैं। सभी इच्छाएँ कभी किसी की भी पूर्ण नहीं हुईं। एक इच्छा के पूर्ण होते ही दूसरी इच्छा उत्पन्न हो जाती है। अतः इच्छापूर्ति से ही सुख प्राप्ति की कामना करने वाला कभी भी संतुष्ट और सुखी नहीं बन सकता।

इच्छा निवृत्ति सबसे कठिन कार्य है। इसकी निवृत्ति का सरल एवं मुख्य उपाय है—कर्म सिद्धांत का गहरा अध्ययन और बार-बार चिंतन-मनन द्वारा उस पर अपनी श्रद्धा का दृढ़ बनना। जब तक अन्तराय कर्म बाधक हैं तब तक कितनी ही तीव्र इच्छा करो, कितना ही भारी पुरुषार्थ करो, इच्छा पूर्ण हो नहीं सकती, संसार की कोई भी दृश्य या अदृश्य शक्ति इच्छापूर्ति में सहायक बन नहीं सकती। जब अन्तराय कर्म समाप्त होगा, शुभ कर्म का उदय होगा, तब भोग, उपभोग, सभी सुखद पदार्थ और अनुकूल परिस्थितियाँ आपकी सेवा में उपस्थित हो जाएंगी। कभी-कभी तो बिना इच्छा और बिना पुरुषार्थ के भी पूर्वकृत निकाचित और महाशुभ कर्मों के उदय से सभी कुछ प्राप्त हो जाता है। भगवान महावीर पर गोशालक ने तेजोलेश्या छोड़ी। उस समय महावीर स्वामी ने अपनी रक्षा के लिए क्या कोई इच्छा और कोई पुरुषार्थ किया था ? उनकी रक्षा उनके निकाचित आयु कर्म से स्वतः ही हुई। शुद्धात्मा सेठ सुदर्शन की अर्जुनमाली के रक्षा कैसे हुई ? शील में दृढ़ सेठ सुदर्शन के लिए शूली का सिंहासन कैसे बना ? क्या उन्होंने कोई इच्छा की थी या कोई पुरुषार्थ किया था ? वे सिर्फ अपने शुद्ध ज्ञान चिंतन में, आत्म एवं परमात्म ध्यान में लीन रहे। दुर्योधन द्वारा जहर खिलाकर बेहोशी की दशा में नदी में बहाया गया भीम उस दशा में अपनी रक्षा का पुरुषार्थ कर ही क्या सकता था ? किन्तु उसके पूर्वकृत शुभ आयु-कर्म ने उसकी रक्षा की। वर्तमान में क्यूबा के राष्ट्रपति क्रास्त्रो की हत्या के लिये बड़ी शक्तियों द्वारा आठ वार प्रयास किये गये किन्तु उसके शुभ दीर्घ आयु-कर्म ने उसे उन स्थानों पर जाने ही नहीं दिया जहाँ पर उसकी हत्या की जानी थी। शालिभद्रजी ने वर्तमान में कोई इच्छा या कोई पुरुषार्थ नहीं किया किन्तु उनके पूर्वकृत अदृष्ट शुभ पुरुषार्थ ने, उनके तीव्र पुण्योदय ने महान सम्पत्ति का स्वामी बना दिया। करोड़पति की गोद जाने वाला या लाटरी का प्रथम बड़ा इनाम पाने वाला कौनसा बड़ा पुरुषार्थ करता है ? सब कुछ पूर्वकृत अदृष्ट शुभ पुरुषार्थ का ही फल है। अंतराय कर्म के रहते कुछ भी नहीं हो सकता। भौतिक इच्छाएँ करना, केवल नवीन कर्मों के बंध का ही कारण बनती है। भौतिक सुख सम्पत्ति की प्राप्ति शुभकर्म एवं पुण्य

करने से ही होती है, केवल इच्छा करने से और अशुभ खोटे पुरुषार्थ से नहीं होती।

कुछ लोग अपनी इच्छापूर्ति के लिए अपनी प्रखर बुद्धि और अपने बल का प्रयोग करते हैं। इस संबंध में तीन बातें याद रखने योग्य हैं—1. बुद्धिर्यस्य बल तस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बलं, 2. बुद्धिः कर्मानुसारिणी, 3. विनाशकाले विपरीत बुद्धिः अर्थात् 1. जिसके पास बुद्धि है उसके पास बल है, बुद्धिहीन के पास बल कहाँ है ? 2. बुद्धि प्राणी के पूर्वकृत कर्मों का अनुसरण करती है अर्थात् शुभ कर्मोदय के समय अच्छी और सहायक बन जाती है और अशुभ कर्मोदय के समय विपरीत और नाशक बन जाती है। यदि किसी को काश्मीर की ओर जाना हो तो उसके अशुभ कर्मोदय के समय उसकी बुद्धि में कोलम्यो का मार्ग ही काश्मीर पहुँचाने वाला दिखने लगता है और उसका यात्रा का पुरुषार्थ उस गंतव्य स्थान के पास पहुँचाने के बजाय उसे दूर भेज देता है। उसकी सारी यात्रा, सारा पुरुषार्थ अधिक हानिकारक बन जाता है, 3. विनाश के समय बुद्धि विपरीत बनकर प्राणी का नाश करवा देती है। कौरव, यादव, रावण आदि इसके अनेक उदाहरण हैं।

केवल बुद्धि और बल से ही मनोरथ पूर्ण हो जाते तो आज बहुत से व्यक्ति जो दुःखी हैं, दुःखी नहीं रहते। बुद्धि और बल से ही इच्छा की पूर्ति नहीं होती।

इच्छा-निवृत्ति के लिये जपने का सूत्र है—

“यदि पुण्य का उदय है तो इच्छा के बिना भी सुख-सम्पत्ति की वर्षा हो जाती है। यदि पाप का उदय है तो इच्छा या पुरुषार्थ करने पर भी कुछ नहीं मिलता। अतः इच्छा-निरोध तप करके कर्मक्षय क्यों नहीं करते ?”

निष्काम भावना से, स्वार्थ रहित मन से, दूसरों का भला करने, उनकी शुद्ध सेवा करने, उनका आत्महित करने में निमित्त बनने की इच्छा रखना एवं प्रयास करना, इच्छा दिखते हुए भी इच्छा नहीं है। ये कर्तव्य पालन हैं जिसका उपदेश संसार के प्रायः सभी धर्म गुरुओं ने दिया है और अपनी मर्यादा के अनुसार उसका पालन भी किया है।

अहंकार-निवृत्ति

अनेक आन्तरिक शत्रुओं को जीतने वाले बड़े-बड़े उपदेशक और धन और स्त्री-परिवार आदि के महान त्यागी तपस्वी संत महात्मा भी कभी-कभी

बड़ा कौन है, बड़ा कौन है, मुझे बताओ बड़ा कौन है।

बड़ा वही है, बड़ा वही है, जो झुकता है बड़ा वही है।।

छोटी-छोटी बातों पर कभी नहीं अकड़ना चाहिए।

अहंकार सब अवगुणों एवं बुराइयों का मूल है। अभिमानी व्यक्ति को लोग अपने मन में महामूर्ख समझते हैं। लोग अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये चाहें उसके सामने उसकी बड़ाई करते हों किन्तु वास्तव में उससे घृणा करते हैं। अहंकार नरक का मार्ग है। अहंकार से दान, शील, तप, धार्मिक आचरण आदि सभी अच्छी क्रियाओं का फल मोक्ष प्राप्ति की दृष्टि से प्रायः निरर्थक-सा रहता है।

अहंकार से बचने का प्रथम उपाय—यह सूत्र जपना कि “किसी प्राणी को उसके पाप कर्म फल भोग से मैं या तीर्थंकर भी नहीं बचा सकते और मेरे भयंकर निकाचित कर्मों की रेखाओं को मैं नहीं बदल सकता, फिर अहंकार किस बात का करूं ?”

दूसरा उपाय है—अपने अवगुणों को याद करके उनके लिये पश्चात्ताप करना एवं उन्हें दूर करने की साधना करना।

तीसरा उपाय है—इस बात का चिंतन करना कि अहंकारी प्रायः कौवे की भाँति प्रशंसा करने वाली लोमड़ी से ठगा जाता है या अकड़ने वाले पेड़ की भाँति आंधी से उखाड़ कर फेंक दिया जाता है।

संग्रह-निवृत्ति

भगवान महावीर का यह स्पष्ट कथन है कि आत्मा के सिवाय कोई भी अन्य पदार्थ अपना नहीं है। धन-सम्पत्ति, परिवार और यह शरीर भी अपना नहीं है। ये सब मृत्यु के आते ही पीछे छूट जाते हैं। ये सब पर-पदार्थ हैं। इनमें आसक्ति रखने वाला, इनका संग्रह करने वाला, इनका लोभ करने वाला, इन परिग्रहों को जमा करने वाला, संसार से ही बंधा रहेगा, संसार में ही चक्कर काटता रहेगा। संसार से छुटकारा और मोक्ष की प्राप्ति तभी संभव है जबकि प्राणी धीरे-धीरे या तुरन्त ही इनका मोह छोड़कर पूर्ण अपरिग्रही, पूर्ण त्यागी बने।

साधारण व्यक्ति के लिए त्याग का क्रम कुछ-कुछ इस प्रकार हो सकता है—प्रथम सुख-दुःख-चेतना-निवृत्ति की साधना, फिर धन सम्पत्ति

मरते समय यदि किसी से मोह-ममता रह गई तो मरने के बाद सर्प, भूत, प्रेत बनकर वहीं मंडराते रहोगे, दुःख पावोगे और दुर्गति में जावोगे। ध्यान का सूत्र है—“पुण्य का उदय हो तो चाहे जितना दान दो, धन की कमी नहीं होगी और पाप का उदय है तो धन किसी भी तरह ठहरने वाला नहीं है।”

विकथा-निवृत्ति

विकथा का अर्थ है—व्यर्थ की कथा। दूसरों के बातों की अनावश्यक चर्चा, उनके दोषों का कथन, श्रवण एवं चिंतन विकथा है। दुनिया की स्वार्थ-प्रेरित, स्वार्थभरी, पक्षपात पूर्ण, गन्दी राजनीति आदि की बातों के समाचार, लेख, भाषण, साहित्य, आलोचना आदि को पढ़ना, सुनना, उनकी राग द्वेषात्मक बातों में पड़ना विकथा है। यह अनर्थ दंड है, प्रमाद है, भावहिंसा है, राग-द्वेष है।

जैन आंगमों में विकथा के चार भेद बताये गये हैं—स्त्री-पुरुष कथा, देशकथा, राजकथा, भोजन कथा। बड़े-बड़े समझदार पंडित, विद्वान, धर्मात्मा, नेता और साधक लोग भी आजकल विकथा में पड़ना अपनी शान समझने लगे हैं। यह वर्तमान सभ्यता का एक चिह्न बनने लगा है किन्तु इसमें 80 प्रतिशत लोगों का 80 प्रतिशत समय व्यर्थ जाता है। एक बात और भी है कि हम दूसरों के भीतरी भावों को जान नहीं सकते। इसलिये एक पक्ष को भला और दूसरे पक्ष को बुरा समझने का हमारे पास कोई आधार भी नहीं है। इस दृष्टि से विकथा से असत्याचरण का बड़ा दोष भी हमें लग जाता है।

घरों में बैठी हुई महिलाएँ, मर्दानी बैठक में बैठी हुई मित्र-मंडली, राजनीतिक गंदी चर्चा में रसपान करने वाली जनता और कभी-कभी धर्मस्थान में बैठे हुए भक्त लोग भी विकथा के सागर में नहाने लगते हैं।

विकथा से बचने के लिए पाँच निषेजात्मक और पाँच विधेयात्मक उपाय हैं। जहाँ दूसरों की निन्दा होती है, झूठी प्रशंसा होती है व्यर्थ की, राग-द्वेष बढ़ाने वाली बातें होती हों वहाँ पर कुछ भी

न कहो वहाँ से उठकर चले जाओ
न सुनो अपने काम में लग जाओ

की निवृत्ति का कार्य दान आदि द्वारा, फिर परिवार की मोह-ममता से विरक्ति और अंत में शरीर की आसक्ति से मुक्ति। महापुरुष तो इन सबको एक झटके में ही छोड़ देते हैं। जैसे शालीभद्रजी ने और धन्नजी ने किया था।

भौतिक सुख एवं धन-सम्पत्ति की प्राप्ति शुभ कर्मों के उदय के अधीन है। वे प्राणी की इच्छा या केवल पुरुषार्थ के अधीन नहीं है। अशुभ कर्मों के उदय होते ही चोर, डाकू, आग, बाढ़, रोग, व्यापार में हानि या अन्य किसी मार्ग से धन-सम्पत्ति चली ही जाती है। धन परायी धरोहर है, जितना हो सके इसका सदुपयोग दान एवं धर्म कार्यों में किया जावे। अपना शरीर भी निश्चित समय पर छूटने वाला है। इसकी भी आसक्ति छोड़कर इसका सदुपयोग निष्काम पर-सेवा में किया जावे। दुखियों के दुःख को यथाशक्ति यथामर्यादा अपने त्याग एवं सेवा द्वारा दूर करना और सुखियों को देखकर प्रसन्न होना जीवन लक्ष्य की प्राप्ति में बहुत आवश्यक है।

त्याग में भी यह बात ध्यान देने योग्य है कि किसी पदार्थ या अवगुण का केवल त्याग कर देने से आसक्ति नहीं छूटती। आसक्ति छूटती है उस अवगुण की हेयता और उसके प्रतिपक्षी भाव की उपादेयता का दिन में कई बार चिंतन, स्मरण करते रहने से। उस अवगुण के जाते ही उसका प्रतिपक्षी गुण स्वतः प्रकट हो जावेगा क्योंकि आत्मा स्वयं ही अनंत गुणों का भंडार है।

संग्रह करना परिग्रह है और पाप है। दान देना दान, शील, तप, भावना में प्रथम धर्म बताया गया है।

लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि दान से विधाता के लेख (कर्मों की रेखा) भी झूटे पड़ जाते हैं (बदल जाती हैं)।

त्याग से, दान देने से अनेक गुणों की प्राप्ति होती है। इसलिये संग्रह मत करो, दान दो, दान दो, दान दो। यदि आपका पुण्योदय है तो दान देने से धन की कमी नहीं होगी और एक के बदले दस या सौ मिलेंगे। यदि पाप का उदय है तो धन चाहे जमीन में गाड़ दीजिये वह कोयला बन जावेगा। पापोदय के समय धन को चोर, डाकू, ठग ले जाते हैं, वह आग में, बाढ़ में चला जाता है, उसे बीमारी खा जाती है। वह ठहर नहीं सकता। इसलिये दान दो, दान दो, अधिक से अधिक दान दो।

मरते समय यदि किसी से मोह-ममता रह गई तो मरने के बाद सर्प, भूत, प्रेत बनकर वहीं मंडराते रहोगे, दुःख पावोगे और दुर्गति में जावोगे। ध्यान का सूत्र है—“पुण्य का उदय हो तो चाहे जितना दान दो, धन की कमी नहीं होगी और पाप का उदय है तो धन किसी भी तरह ठहरने वाला नहीं है।”

विकथा-निवृत्ति

विकथा का अर्थ है—व्यर्थ की कथा। दूसरों के बातों की अनावश्यक चर्चा, उनके दोषों का कथन, श्रवण एवं चिंतन विकथा है। दुनिया की स्वार्थ-प्रेरित, स्वार्थभरी, पक्षपात पूर्ण, गन्दी राजनीति आदि की बातों के समाचार, लेख, भाषण, साहित्य, आलोचना आदि को पढ़ना, सुनना, उनकी रंग द्वेषात्मक बातों में पड़ना विकथा है। यह अनर्थ दंड है, प्रमाद है, भावहिंसा है, राग-द्वेष है।

जैन आंगमों में विकथा के चार भेद बताये गये हैं—स्त्री-पुरुष कथा, देशकथा, राजकथा, भोजन कथा। बड़े-बड़े समझदार पंडित, विद्वान, धर्मात्मा, नेता और साधक लोग भी आजकल विकथा में पड़ना अपनी शान समझने लगे हैं। यह वर्तमान सभ्यता का एक चिह्न बनने लगा है किन्तु इसमें 80 प्रतिशत लोगों का 80 प्रतिशत समय व्यर्थ जाता है। एक बात और भी है कि हम दूसरों के भीतरी भावों को जान नहीं सकते। इसलिये एक पक्ष को भला और दूसरे पक्ष को बुरा समझने का हमारे पास कोई आधार भी नहीं है। इस दृष्टि से विकथा से असत्याचरण का बड़ा दोष भी हमें लग जाता है।

घरों में बैठी हुई महिलाएँ, मर्दाना बैठक में बैठी हुई मित्र-मंडली, राजनीतिक गंदी चर्चा में रसपान करने वाली जनता और कभी-कभी धर्मस्थान में बैठे हुए भक्त लोग भी विकथा के सागर में नहाने लगते हैं।

विकथा से बचने के लिए पाँच निषेधात्मक और पाँच विधेयात्मक रण्य है। जहाँ दूसरों की निन्दा होती है, झूठी प्रशंसा होती है व्यर्थ की, राग-द्वेष बढ़ाने वाली बातें होती हैं वहाँ पर कुछ भी

न कहो वहाँ से उठकर चले जाओ
न सुनो अपने काम में लग जाओ

मत देखो	परमात्मा का भजन करो
मत सोचो	स्वाध्याय सूत्रों का ध्यान करो
मत बैठो	पर-सेवा में लगे

अपने बचत के समय को निष्काम निस्वार्थ, बिना कुछ वेतन लिये ही दूसरों की शुभ हितकारी सेवा में लगाओ। (क) रोगियों की मुफ्त में सेवा करो, (ख) कलाकार हो तो मुफ्त में दूसरों को कला का ज्ञान दो, (ग) विद्वान हो तो किसी परोपकारी संस्था में मुफ्त में काम करो, (घ) साधारण मनुष्य भी बीमारों, गरीबों, दुःखियों के घर जाकर उनके आँसू पोंछ सकता है या (ङ) छोटे-छोटे बच्चों को मुफ्त में पढ़ाओ।

विकथा से अनेक अवगुण आते हैं और विकथा से बचने वाला 80 प्रतिशत राग-द्वेष से बच जाता है। विकथा से बचना मोक्ष मार्ग पर चलना है।
आत्म-ध्यान

विकथा एवं अनेक प्रकार के विकारों से बचने के लिये ज्ञान चिंतन एवं आत्म-ध्यान सबसे सुन्दर उपाय है। आत्म-ध्यान में निम्नलिखित बातों की साधना की जाती है—1. शरीर अलग है और मैं (आत्मा) अलग हूँ। 2. यह शरीर मेरा नहीं है। 3. यह शरीर मैं नहीं हूँ इसमें जो चेतन है वही मैं (आत्मा) हूँ। आत्म-ध्यान के बाबत विशेष बातें “ध्यान एक अनुशीलन” में दी गई है जो अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर से प्रकाशित हो चुकी है।

साधना का एक साधन

कषाय-निवृत्ति की साधना के लिये नीचे दिये गये शब्द-चित्र को बार-बार देखिये और लिखिये जिससे इस पुस्तक में दी गई साधना की नौ बातें हर समय आँखों के सामने झलकती रहें। आँखें शायद मन की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हैं। यदि आँखें इस शब्द चित्र को देखती रहेंगी तो मन में इतनी शक्ति नहीं है कि वह दूसरी ओर भाग जावे।

क्रोध	दुःख-चेतना	अहं
दुर्भावना	सुख-चेतना	संग्रह
परिवार मोह	इच्छा	विकथा

साधना का सुगम मार्ग

हमारा लक्ष्य है निर्विकार दशा की प्राप्ति। इसके लिये क्या यह ज्यादा हितकारी नहीं रहेगा कि अन्य दूसरे प्रकार के साधना और ध्यान के मार्गों में अपना समय नहीं लगा कर हम अपनी साधना क्रोध-निवृत्ति या दुर्भावना-निवृत्ति से ही प्रारंभ करें ? इधर-उधर भटकने से क्या लाभ ?

अवगुण-निवृत्ति की साधना में दो लाभ हैं। प्रथम—इससे सभी मानसिक तनाव आदि दूर होंगे और मन पर पूर्ण विजय प्राप्त होगी। दूसरा—इससे हमारे संचित कर्मों की महान निर्जरा होगी।

ध्यान के लिए सात बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। 1. ध्यान का सूत्र, 2. शांत एकांत स्थान, 3. सुखासन, 4. निर्धारित शांत समय, 5. एकाग्रता, 6. पुनरावृत्ति और 7. अभ्यास। इसमें अंतिम दो बातों पर विशेष ध्यान दिया जाये। सूत्र को दिन रात में कई बार दोहरावें। सोते-जागते, उठते-बैठते, दस में यात्रा करते समय भी, दुकान में काम करते समय भी, और रात्रि में बिस्तर पर लेटे हुए भी स्वाध्याय या ध्यान के सूत्र को दोहराइये। पुनरावृत्ति यानी दोहराना साधना का महत्त्वपूर्ण अंग है।

साधना में अभ्यास का भी बहुत महत्त्व है। इस पुस्तक के प्रारंभ में अभ्यास के कुछ भेद बताये गये हैं। उनके अलावा किसी गुण को जीवन में उतारने के अन्य तरीके भी हो सकते हैं। गुणों को अपने आचरण का अंग बनाना ही साधना का चरम लक्ष्य है।

आत्मा की निर्विकार दशा की प्राप्ति के लिये आचरण शुद्धि की आवश्यकता है और आचरण की शुद्धि तभी संभव है जबकि विचार शुद्ध हो सकें। विचार-शुद्धि का उपाय है दिन रात में कई बार समता या स्वाध्याय के सूत्रों को दोहराते रहना, उनकी पुनरावृत्ति करते रहना। और आचरण-शुद्धि का उपाय है—उन सूत्रों का पालन करना, उन्हें आचरण में उतारना। किन्तु यदि मोहनीय कर्म की प्रबलता से इस जन्म में यदि वे आचरण का अंग नहीं बन सकें तो भी उनकी साधना में लगे रहिये। उनके चिंतन-मनन और स्वाध्याय से बने हुए संस्कार व्यर्थ नहीं जायेंगे। वे अगले किसी जन्म में साधक की आचरण-शुद्धि में सहायक बनेंगे। कोई भी क्रिया व्यर्थ नहीं जाती। फिर इन सूत्रों का ध्यान या स्वाध्याय तो आन्तरिक तप है। वह व्यर्थ कैसे जायेगा ?

मत देखो	परमात्मा का भजन करो
मत सोचो	स्वाध्याय सूत्रों का ध्यान करो
मत बैठो	पर-सेवा में लगे

मत सोचो स्वाध्याय सूत्रों का ध्यान करो

मत बैठो पर-सेवा में लगे

अपने बचत के समय को निष्काम निस्वार्थ, बिना कुछ वेतन लिये ही दूसरों की शुभ हितकारी सेवा में लगाओ। (क) रोगियों की मुफ्त में सेवा करो, (ख) कलाकार हो तो मुफ्त में दूसरों को कला का ज्ञान दो, (ग) विद्वान हो तो किसी परोपकारी संस्था में मुफ्त में काम करो, (घ) साधारण मनुष्य भी बीमारों, गरीबों, दुःखियों के घर जाकर उनके आँसू पोंछ सकता है या (ङ) छोटे-छोटे बच्चों को मुफ्त में पढ़ाओ।

दूसरों की शुभ हितकारी सेवा में लगाओ। (क) रोगियों की मुफ्त में सेवा

करो, (ख) कलाकार हो तो मुफ्त में दूसरों को कला का ज्ञान दो,

(ग) विद्वान हो तो किसी परोपकारी संस्था में मुफ्त में काम करो,

(घ) साधारण मनुष्य भी बीमारों, गरीबों, दुःखियों के घर जाकर उनके आँसू

पोंछ सकता हूँ या (ङ) छोटे-छोटे बच्चों को मुफ्त में पढ़ाओ।

विकथा से अनेक अवगुण आते हैं और विकथा से बचने वाला 80 प्रतिशत राग-द्वेष से बच जाता है। विकथा से बचना मोक्ष मार्ग पर चलना है।

प्रतिशत राग-द्वेष से बच जाता है। विकथा से बचना मोक्ष मार्ग पर चलना है।

आत्म-ध्यान

विकथा एवं अनेक प्रकार के विकारों से बचने के लिये ज्ञान चिंतन एवं आत्म-ध्यान सबसे सुन्दर उपाय है। आत्म-ध्यान में निम्नलिखित बातों की साधना की जाती है—1. शरीर अलग है और मैं (आत्मा) अलग हूँ। 2. यह शरीर मेरा नहीं है। 3. यह शरीर मैं नहीं हूँ इसमें जो चेतन है वही मैं (आत्मा) हूँ। आत्म-ध्यान के बाबत विशेष बातें “ध्यान एक अनुशीलन” में दी गई है जो अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर से प्रकाशित हो चुकी है।

एवं आत्म-ध्यान सबसे सुन्दर उपाय है। आत्म-ध्यान में निम्नलिखित बातों

की साधना की जाती है—1. शरीर अलग है और मैं (आत्मा) अलग हूँ।

2. यह शरीर मेरा नहीं है। 3. यह शरीर मैं नहीं हूँ इसमें जो चेतन है वही

मैं (आत्मा) हूँ। आत्म-ध्यान के बाबत विशेष बातें "ध्यान एक अनुशीलन"

में दी गई है जो अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर से प्रकाशित हो चुकी है।

साधना का एक साधन

कषाय-निवृत्ति की साधना के लिये नीचे दिये गये शब्द-चित्र को बार-बार देखिये और लिखिये जिससे इस पुस्तक में दी गई साधना की नौ बातें हर समय आँखों के सामने झलकती रहें। आँखें शायद मन की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हैं। यदि आँखें इस शब्द चित्र को देखती रहेंगी तो मन में इतनी शक्ति नहीं है कि वह दूसरी ओर भाग जावे।

बार-बार देखिये और लिखिये जिससे इस पुस्तक में दी गई साधना की नौ

बातें हर समय आँखों के सामने झलकती रहें। आँखें शायद मन की अपेक्षा

अधिक शक्तिशाली हैं। यदि आँखें इस शब्द चित्र को देखती रहेंगी तो मन

में इतनी शक्ति नहीं है कि वह दूसरी ओर भाग जावे।

क्रोध	दुःख-चेतना	अहं
दुर्भावना	सुख-चेतना	संग्रह
परिवार मोह	इच्छा	विकथा

साधना का सुगम मार्ग

हमारा लक्ष्य है निर्विकार दशा की प्राप्ति। इसके लिये क्या यह जगदा हितकारी नहीं रहेगा कि अन्य दूसरे प्रकार के साधना और ध्यान के मार्गों में अपना समय नहीं लगा कर हम अपनी साधना क्रोध-निवृत्ति या दुर्भावना-निवृत्ति से ही प्रारंभ करें ? इधर-उधर भटकने से क्या लाभ ?

अवगुण-निवृत्ति की साधना में दो लाभ हैं। प्रथम—इससे सभी मानसिक तनाव आदि दूर होंगे और मन पर पूर्ण विजय प्राप्त होगी। दूसरा—इससे हमारे संचित कर्मों की महान निर्जरा होगी।

ध्यान के लिए सात बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। 1. ध्यान का सूत्र, 2. शांत एकांत स्थान, 3. सुखासन, 4. निर्धारित शांत समय, 5. एकाग्रता, 6. पुनरावृत्ति और 7. अभ्यास। इसमें अंतिम दो बातों पर विशेष ध्यान दिया जावे। सूत्र को दिन रात में कई बार दोहरावें। सोते-जागते, उठते-बैठते, बस में यात्रा करते समय भी, दुकान में काम करते समय भी, और रात्रि में निद्रा पर लेटे हुए भी स्वाध्याय या ध्यान के सूत्र को दोहराइये। पुनरावृत्ति यानी दोहराना साधना का महत्त्वपूर्ण अंग है।

साधना में अभ्यास का भी बहुत महत्त्व है। इस पुस्तक के प्रारंभ में अभ्यास के कुछ भेद बताये गये हैं। उनके अलावा किसी गुण को जीवन में उतारने के अन्य तरीके भी हो सकते हैं। गुणों को अपने आचरण का अंग बनाना ही साधना का चरम लक्ष्य है।

आत्मा की निर्विकार दशा की प्राप्ति के लिये आचरण शुद्धि की आवश्यकता है और आचरण की शुद्धि तभी संभव है जबकि विचार शुद्ध हो सकें। विचार-शुद्धि का उपाय है दिन रात में कई बार समता या स्वाध्याय के सूत्रों को दोहराते रहना, उनकी पुनरावृत्ति करते रहना। और आचरण-शुद्धि का उपाय है—उन सूत्रों का पालन करना, उन्हें आचरण में उतारना। किन्तु यदि मोहनीय कर्म की प्रबलता से इस जन्म में यदि वे आचरण का अंग नहीं बन सकें तो भी उनकी साधना में लगे रहिये। उनके चिंतन-मनन और स्वध्याय से बने हुए संस्कार व्यर्थ नहीं जावेंगे। वे अगले किसी जन्म में आचरण की शुद्धि में सहायक बनेंगे। कोई भी क्रिया व्यर्थ नहीं जाती। फिर इन सूत्रों का ध्यान या स्वाध्याय तो आभ्यंतर तप है। वह व्यर्थ नहीं जावेगा ?

: कषाय मुक्ति :

तीसरा भाग

कषाय मुक्ति की कसौटी और फल

वही मुनि कषाय मुक्त माना जाता है जो रोग या दुःख में दुःखी नहीं होता। भौतिक सुख (इन्द्रिय सुख या शरीर सुख) को सुख नहीं मानता और हर समय शुद्ध भावना (विचार या ध्यान) में लीन रहता है। कषाय मुक्ति का फल है—सिद्ध पद की प्राप्ति।

कषाय-मुक्ति का अभ्यास

कषाय से मुक्त होने का अभ्यास करने का सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ स्थान है—गृहस्थी के लिए अपना घर। जो पुरुष या स्त्रीयों अपने क्रोध, अहंभाव, कपट और स्वार्थ को छोड़कर प्रेमभाव, विनयभाव और अनुकम्पा भाव से त्याग भाव पूर्वक अपने वृद्ध माता-पिता, भाई-बहिन, सास-ससुर और सगे-संबंधी की सेवा करते हैं, वे कषाय मुक्त हो जाते हैं। जो घर में ही लड़ाई-झगड़े, कपट, कलह आदि रखते हैं उनके लिए कषाय मुक्त हो जाना कठिन हो जाता है। कुछ मनुष्य और स्त्रियों जब तक वे स्वयं वृद्ध नहीं हो जाते तब तक वे वृद्धों के मन की वेदना को समझ नहीं पाते। जब वे स्वयं वृद्ध हो जाते हैं तब उन्हें पता चलता है कि घर के वृद्ध लोगों के मन में वेदना क्या थी और वे क्या चाहते थे ? तब वे पछताते हैं और कहते हैं—हाय ! हाय ! हमने अपने जीवन में कुछ नहीं किया। हमने घर में लड़ाई-झगड़े रखे। हमने वृद्धों के अंतर की बातों को नही सुना और वे अपने मन की बातें अपने साथ मन में ही ले गए।

संसार में मनुष्य चाहे कितना ही गरीब हो किन्तु यदि वह अपने वृद्ध माता-पिता, भाई-बहिन, सास-ससुर, सगे-संबंधी एवं धर्म गुरुओं की प्रेमपूर्वक सेवा करता है तो संसार के महापुरुषदान और महानामदान लोगों की गिनती में उनका स्थान गृहस्थों में सर्वप्रथम रहता है। ऐसे पुरुष ही कषाय मुक्त होते हैं और वे अपना संसार छटाते हैं।

: कषाय मुक्ति :

तीसरा भाग

कषाय मुक्ति की कसौटी और फल

वही मुनि कषाय मुक्त माना जाता है जो रोग या दुःख में दुःखी नहीं होता। भौतिक सुख (इन्द्रिय सुख या शरीर सुख) को सुख नहीं मानता और हर समय शुद्ध भावना (विचार या ध्यान) में लीन रहता है। कषाय मुक्ति का फल है—सिद्ध पद की प्राप्ति।

कषाय-मुक्ति का अभ्यास

कषाय से मुक्त होने का अभ्यास करने का सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ स्थान है—गृहस्थी के लिए अपना घर। जो पुरुष या स्त्रीयाँ अपने क्रोध, अहंभाव, कपट और स्वार्थ को छोड़कर प्रेमभाव, विनयभाव और अनुकम्पा भाव से त्याग भाव पूर्वक अपने वृद्ध माता-पिता, भाई-बहिन, सास-ससुर और सगे-संबंधी की सेवा करते हैं, वे कषाय मुक्त हो जाते हैं। जो घर में ही लड़ाई-झगड़े, कपट, कलह आदि रखते हैं उनके लिए कषाय मुक्त हो जाना कठिन हो जाता है। कुछ मनुष्य और स्त्रियाँ जब तक वे स्वयं वृद्ध नहीं हो जाते तब तक वे वृद्धों के मन की वेदना को समझ नहीं पाते। जब वे स्वयं वृद्ध हो जाते हैं तब उन्हें पता चलता है कि घर के वृद्ध लोगों के मन में वेदना क्या थी और वे क्या चाहते थे ? तब वे पछताते हैं और कहते हैं—हाय ! हाय ! हमने अपने जीवन में कुछ नहीं किया। हमने घर में लड़ाई-झगड़े रखे। हमने वृद्धों के अंतर की बातों को नहीं सुना और वे अपने मन की बातें अपने साथ मन में ही ले गए।

संसार में मनुष्य चाहे कितना ही गरीब हो किन्तु यदि वह अपने वृद्ध माता-पिता, भाई-बहिन, सास-ससुर, सगे-संबंधी एवं धर्म गुरुओं की प्रेमपूर्वक सेवा करता है तो संसार के महापुण्यवान और महानाग्यवान लोगों की श्रेणी में समाया स्थान गृहस्थों में सर्वप्रथम रहता है। ऐसे पुरुष ही कषाय मुक्त होते हैं और वे अपना संसार घटाते हैं।

दंड का अधिकार

आप विचारिए कि दंड देने का अधिकार और उसकी शक्ति किसमें है। क्या आप अपने से शरीर बल, धन बल, राज्य बल, बुद्धि बल आदि में आपसे हर प्रकार से अधिक शक्तिशाली स्वयं के अपराधी को भी दंड दे सकते हैं या अपने से कमजोर अपराधी को ही क्रोध और अहंभाव में आकर बदला लेने की भावना से दो डंडे लगाकर कषाय भाव से नवीन कर्म बांधकर भविष्य के लिए झगड़े की नींव को मजबूत कर अपना संसार ही बढ़ाते हैं।

कुछ चालाक और चतुर आदमी कानून का सहारा लेकर राज्य सरकार से दंड पाने से भी बच जाते हैं किन्तु राज्य सरकार के दंड से बचने वाले भी वास्तव में दंड देने वाली एक अदृश्य किन्तु अचूक महान कर्मशक्ति के दंड से नहीं बच पाते। दंड देने का वास्तविक अधिकार कर्मशक्ति को है। राजसत्ता जो दंड देती है वह भी कर्मशक्ति के अधीन है।

संत संस्कृति यही कहती है कि दंड देना कर्मशक्ति का ही काम है। कषाय मुक्ति का अभिलाषी किसी व्यक्ति को दंड देने का काम अपने हाथ में नहीं लेता। वह अपराधी के सामने पूर्ण समताधारी मुनि गजसुकुमाल बन जाता है और वह अपराधी को दंड मिले ऐसी इच्छा भी नहीं करता।

कषाय-मुक्ति में असफलता क्यों ?

कुछ लोग कषाय के चार भेद क्रोध, मान, माया, लोभ में से प्रथम भेद क्रोध से होने वाले अनर्थ को देखकर मन में पक्का विचार एवं दृढ़ संकल्प करते हैं। और कुछ लोग तो क्रोध छोड़ने का पच्चखाण भी बिलकुल भूल जाते हैं और क्रोध में आकर कभी-कभी महा अनर्थ भी कर बैठते हैं। बाद में पछताते हैं। इसका कारण यह दिखता है कि अनादिकाल से क्रोध उनका साथी बना हुआ है और क्रोध के परमाणु उनके शरीर के कण-कण में भरे हुए हैं। जिस प्रकार भालू से पकड़े जाने पर भालू से मनुष्य का छुटकारा होना कठिन होता है उसी प्रकार क्रोध द्वारा पकड़े गये किसी मनुष्य का क्रोध से छुटकारा पाना असंभव तो नहीं, कठिन अवश्य हो गया है। इस साधना में साधकों को अपनी योग्यता के अनुसार महीनों और वर्षों लग सकते हैं।

साधना का तरीका

क्रोध छोड़ने के लिए नीचे लिखे प्रश्नों को समझ कर उनके उत्तर पर विचार कीजिये और उन्हें एक कॉपी में लिखिये—1. क्रोध क्या है ?

2. क्रोध कितने प्रकार का होता है ? 3. यह कब आता है ? 4. क्रोधी अपने मन में शत्रु के प्रति क्या विचार करता रहता है ? 5. क्रोधी क्या उत्पात करता है ? 6. क्रोधी मनुष्य के उदाहरण, 7. क्रोध से होने वाली हानियाँ, 8. क्रोध जीतने वालों के उदाहरण, 9. क्रोध जीतने के लाभ, 10. क्रोध पर विजय पाने के साधारण नियम, 11. क्रोध जीतने के विशेष नियम। शुरु के दस प्रश्नों के उत्तर कुछ महीनों तक प्रतिदिन पाँच-दस बार दोहराइये और अंतिम ग्यारहवें प्रश्न का उत्तर कुछ वर्षों तक प्रतिदिन कम-से-कम पन्द्रह-बीस बार दोहराइये। क्रोध के जो संस्कार अनंत अनादिकाल से मनुष्य के साथी बनकर उसके अचेतन मन में गहराई तक बैठे हुए हैं उनको हटाने में महीनों और वर्षों लग जाना कोई बड़ी बात नहीं है।

मनुष्य का चेतन मन अर्थात् उसका वर्तमान ज्ञान, क्रोध को दुरा समझकर छोड़ना चाहता है किन्तु उसका अचेतन मन अर्थात् पूर्व जन्मों का गलत अनुभव क्रोध को अपना हितकारी मित्र मानता है और उसे छोड़ना नहीं चाहता। अतः अचेतन मन को समझाने के लिए चेतन मन को महीनों और वर्षों साधना करनी पड़ती है। अचेतन मन को हमेशा के लिए निकालने के लिए क्रोध पर विजय पाने के उपाय बताने वाली पुस्तकें पढ़िए। इस समय में अन्य लेख भी पढ़िये। संतों के प्रवचन सुनिये, उनसे उपाय पूछिए। पूर्ण समताधारी मुनि गजसुकुमाल जैसे मुनिजनों की पूर्ण समता को बताने वाले साहित्य पढ़िए। इस अध्ययन के साथ-साथ अपनी कॉपी में मुख्य-मुख्य बातें भी लिखिये। एकांत में बैठकर इस संबंध में चिंतन-मनन कीजिए। अपनी आत्मा में अनंतज्ञान और अनुभव भरा हुआ है। उससे कुछ उपाय पूछिए। फिर कुछ वाक्य या सूत्र प्रतिदिन स्वाध्याय के लिए बनाइये। मन लगा लप करिये। अधिक से अधिक समय उसके चिंतन मनन में दीजिए। इससे सफलता अवश्य मिलेगी।

क्रोध मुक्ति के उपाय

क्रोध के संबंध में कषाय मुक्ति प्रथम भाग, कषाय मुक्ति द्वितीय भाग में काफी सामग्री दी गई है। क्रोध छोड़ने के साधारण उपाय हैं—क्रोध आये तो तुरंत जल पीना, वहाँ से उठकर दूर चले जाना, मन को अच्छे लगने वाले काम करना, कहानी, लेख या पुस्तकों को पढ़ने में लग जाना चाहिए। क्रोध को जीतने के विशेष उपाय निम्न हैं—दंड या दुःख अपने अशुभ न मिलता है, परिवार या दूसरे लोग या रोग या दुर्घटनाएँ तो केवल न मिलते हैं। मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदाई की पूर्ण समता

..... कषाय-मुक्ति -

सबे ज्ञाने पर भी पूर्ण समता बनाये रख सकता है। इस विषय में "ध्यान एक अनुशीलन" पुस्तक से जानकारी मिल सकेगी।

अहंकार से मुक्ति

अहंकार एक ऐसा अवगुण है जिससे अहंकारी का आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक पतन होता रहा है। चापलूस लोग उसे ढगते और चूसते जाते हैं। समाज के अच्छे-अच्छे आदमी उससे घृणा करने लगते हैं और इस अहंकारी व्यक्ति को दान, शील, तप आदि धार्मिक क्रियाओं का फल मिलना रुक जाता है। मुनि बाहुबलीजी को अहंकार के कारण ही घोर तप करने के बाद भी केवलज्ञान मिलना रुका रहा।

एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को तार नहीं सकता, मार नहीं सकता, बना नहीं सकता, बिगाड़ नहीं सकता। दूसरों के कर्मों को बदल नहीं सकता, अपने स्वयं के निकाचित कर्मों से बच नहीं सकता। वह अपने धन से अपने दुश्मनों को दूर कर नहीं सकता। उसके पापोदय के समय उसका परिवार उसकी सहायता कर नहीं सकता और जब वह बीमार या वृद्ध हो जाता है तब वह स्वयं को भी संभाल नहीं सकता। ऐसी स्थिति में किसी भी प्राणी के लिए किसी भी बात का अहंकार करना भयंकर भूल और निरर्थक है। बलवान मनुष्य नहीं होता है, बलवान होता है समय।

रहिमन नर को कहा बड़ो, समय बड़ो बलवान।

काया लूटी गोपिका, वही अर्जुन वही याण।।

अर्थात्—गोपिकाएँ लूट ली गई और महाभारत का सबसे बड़ा विजेता अर्जुन खड़ा-खड़ा देखता रह गया। योग के अनुसार द्वारिका जलने लगी, मरने लगे, श्रीकृष्ण के माता-पिता देवकी महारानी और श्री वासुदेवजी मिलाकर कहने लगे—“अरे कृष्ण ! अरे बलराम ! हमें बचाओ। उस समय मैं सबसे बड़े शक्तिशाली और सबसे अधिक बुद्धिमान श्रीकृष्ण और बलराम ने अपने माता-पिता को बचाने का प्रयास भी किया किन्तु वे उन्हें बचा नहीं सके। वे खड़े-खड़े देखते ही रह गये।

तीर्थंकर महावीर के दो शिष्य मुनि सुनधत्र और मुनि सर्जानुभूति तेजोलेखों के सामने ही गोशालक द्वारा तेजोलेखों को जला दिया गया। तीर्थंकर महावीर के पास शीतोलेख था जो तेजोलेखों को शांत कर देता है, फिर भी दोनों संत बच नहीं पाए। शक्ति मनुष्य में नहीं होती, शक्ति देव में है समय में, शुभ कर्मों में। मनुष्य को किसी भी बात का अहंकार करना भयंकर भूल है। अहंकार से बचने के लिए इस सूत्र का बार-बार

हम या समाचार पत्रों में दो समाचार पढ़कर प्राणी एक का समर्थन व अनुमोदन करता है और दूसरे का विरोध और उसकी निंदा करता है। इस प्रकार हमने लाखों मनुष्यों की हत्या का अनुमोदन करना घोर दुर्भावना है।

इन वर्गों को पढ़ते हुए समाजदार प्राणी मारकाट का अनुमोदन नहीं करते हुए मरने वालों के लिए अपने मन में अनुकम्पा भाव लाकर और मारने वालों को समझा देने के लिए परमात्मा से प्रार्थना करता हुआ दुर्भावना की जगह सदभावना भरता हुआ कर्मों की महान निर्जरा भी कर सकता है। दुर्भावना से छुटने के लिए "सबका भला हों, सबका भलो हों" इस मंत्र का जाप करना चाहिए।

सुखानुभूति से मुक्ति

मनुष्य प्राण अपने सभी काम या अधिकांश काम भौतिक या शारीरिक सुख प्राप्ति की भावना से करते है। वे महाआरम्भ, महापरिग्रह और महाभयंकर युद्ध आदि के कर्मों में लगे रहते हैं। वे विशालकाय हिंसक जातियों, बड़े-बड़े पशुजघ घरों (कत्तलघरों) के निर्माण की कल्पना और योजना बनाने में लगे रहते हैं। अवसर मिलने पर उन्हें कार्य रूप में परिणित करते हैं। इस प्रकार वे महाभयंकर कर्म करते हैं जिससे कुछ लोग सातवें नरक में भी पहुँच जाते हैं। कुछ लोग इस तथ्य को जानते हुए भी इन कर्मों से बचने का विचार नहीं करते क्योंकि अनंत अनादिकाल से हिंसक काम करते रहते हैं और आज समाज में बड़े माने जाने व पूजे जाने वाले भी इन लोगों का देखकर उनका अनुकरण करते हुए साधारण लोग भी इस काम शुरू करते हैं। बहुत से साधारण लोग भी जो इन योजनाओं को कार्य रूप में परिणित नहीं कर सकते वे बाहर से किंचित मात्र हिंसा न करते हुए भी बहुत कलमा के द्वारा अपने मन को परिणामों को हिंसक बनाकर अपने कर्मों का काय करके नरक में पहुँच जाते हैं।

जाना जाता है कि हम धन इसलिए चाहते हैं कि धन से सुख मिलता है। मनुष्य हमेशा यह मन है। कम धन होने के कारण मनुष्य को जितना सुख मिलता है उससे बड़ा भूषा अधिक सुख धनवानों को धन के कारण मिलता है। बहुत सारी बड़े समस्याओं से मिलता है। उसकी तुलना में कम सुख मिलता है। धनवान के अनेक गल्ले होते हैं, उनका सुख भी बहुत बड़ा है। समझ, शरीर जिता की आग में जलता रहता है। धनवान की जो समस्या बड़ी बड़ी है उसका मलने का प्रयत्न करते हैं। धनवानों को बहुत बड़ा सुख मिलता है। धनवानों के साथ में भी सुख

धन को कई कष्ट उठाने पड़ते हैं और उनका परिणाम भी भोगना पड़ता है। 1. धन कमाने के लिए वे अपने जीवन को खतरे में डालते हैं। 2. अपने शत्रुओं को खोते हैं। 3. भारी अशुभ कर्मों का बंध करके बाद में उनका दुःख भोगते हैं। 4. धन वालों की संतान अक्सर लड़ती रहती है। 5. कभी-कभी आलसी और चरित्रहीन भी धन जाता है। 6. धनवान धन की चिंता के लिए चिंतित रहते हैं। उन्हें डकैती आदि का भय रहता है। 7. धनवानों के सगे-संबंधी उससे धन माँगते हैं और नहीं देने पर नाराज होकर उनके शत्रु बन जाते हैं। 8. धन से किसी के कर्मों को बदला नहीं जा सकता। 9. किसी की चिंता दूर नहीं की जा सकती। 10. असाध्य रोग मिटाया नहीं जा सकता। 11. सत्य को ढाला नहीं जा सकता। 12. धन धर्म लौटा नहीं जा सकता। 13. धन होने पर भी अशुभ कर्मों का उदय होता है। 14. धन से सुख की प्राप्ति नहीं होती, राजा-महाराजा और धनी आदमी प्रायः दुःखी होते देखे गये हैं। 15. धन पास में न होने पर भी संत, महात्मा, गुरु आदमी और संतोषी पुरुष सुखी देखे गये हैं और उनके लिये आवश्यकता पड़ने पर धनवान लोग लाखों रुपया खर्च करने के लिए तैयार होते हैं। अतः सुख धन से नहीं पुण्योदय से मिलता है।

परिवार-मोह

परिवार के संबंध में तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं—परिवार में आज जिस-जिस प्राणी ने जिस-जिस प्राणी के साथ, जिस-जिस रूप में संबंध बनाया है, भाई-बहन, पिता-पुत्र आदि के रूप में जो जैसा संबंध जोड़ा है, उसी संबंध पहले हमेशा नहीं रहता है और भविष्य में ही हमेशा नहीं रहेगा। इसका ही नहीं बल्कि यह भी निश्चित नहीं है कि अन्य किसी रूप में पुनः कोई संबंध भी रहेगा या नहीं। ऐसी स्थिति में व्यावहारिक भावना यह किसी प्राणी को अपने परिवार में कह सकते हैं, किन्तु निश्चय दृष्टि से यह प्राणी अलग-अलग है, स्वतंत्र है और अकेले है। यह कोई किसी

मनुष्य को कई कष्ट उठाने पड़ते हैं और उनका परिणाम भी भोगना पड़ता है। 1. धन कमाने के लिए वे अपने जीवन को खतरे में डालते हैं। 2. अपने स्वास्थ्य को खोते हैं। 3. भारी अशुभ कर्मों का बंध करके बाद में उनका बुरा फल भोगते हैं। 4. धन वालों की संतान अक्सर लड़ती रहती है। 5. कभी-कभी आलसी और चरित्रहीन भी बन जाता है। 6. धनवान धन की रक्षा के लिए चिंतित रहते हैं। उन्हें डकैती आदि का भय रहता है। 7. धनवानों के सगे-संबंधी उससे धन माँगते हैं और नहीं देने पर नाराज होकर उनके शत्रु बन जाते हैं। 8. धन से किसी के कर्मों को बदला नहीं जा सकता। 9. किसी की चिंता दूर नहीं की जा सकती। 10. असाध्य रोग को मिटाया नहीं जा सकता। 11. सत्य को टाला नहीं जा सकता। 12. धन से धर्म खरीदा नहीं जा सकता। 13. धन होने पर भी अशुभ कर्मों का उदय हो तो सुख की प्राप्ति नहीं होती, राजा-महाराजा और धनी आदमी प्रायः दुःखी होते देखे गये हैं। 14. धन पास में न होने पर भी संत, महात्मा, ईमानदार आदमी और संतोषी पुरुष सुखी देखे गये हैं और उनके लिये आवश्यकता पड़ने पर धनवान लोग लाखों रुपया खर्च करने के लिए तैयार रहते हैं। अतः सुख धन से नहीं पुण्योदय से मिलता है।

परिवार-मोह

परिवार के संबंध में तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं—परिवार में आज जिस-जिस प्राणी ने जिस-जिस प्राणी के साथ, जिस-जिस रूप में पति-पत्नी, भाई-बहिन, पिता-पुत्र आदि के रूप में जो जैसा संबंध जोड़ा है, वह वैसा संबंध पहले हमेशा नहीं रहता है और भविष्य में ही हमेशा नहीं रहेगा। इतना ही नहीं बल्कि यह भी निश्चित नहीं है कि अन्य किसी रूप में दूसरा कोई संबंध भी रहेगा या नहीं। ऐसी स्थिति में व्यावहारिक भाषा में हम किसी प्राणी को अपने परिवार में कह सकते हैं, किन्तु निश्चय दृष्टि से सभी प्राणी अलग-अलग हैं, स्वतंत्र हैं और अकेले हैं। यहाँ कोई किसी का नहीं है।

द्वितीय—किसी भी प्राणी को उसके शुभ या अशुभ कर्मों के अनुसार जो सुख या दुःख मिलता है उसमें निमित्त बनने के अलावा उसे बदलना या घटाना-बढ़ाना परिवार के किसी भी सदस्य अथवा तीर्थकर के हाथ में नहीं है। अतः 'कर्म-फल भोग' दृष्टि से भी सब प्राणी अलग हैं, स्वतंत्र हैं, अकेले हैं।

मोक्ष पाने की इच्छा रखने वाले को माया छोड़कर मन, वचन और काया से सत्य को जीवन में अपनाना चाहिए। सत्य में महान शक्ति है। साधारण मनुष्य से देवताओं में, देवताओं से तपस्वी में और तपस्वी से सत्यवादी में अधिक शक्ति होती है। इसी कारण सत्यवादी महाराज हरिश्चन्द्र ने तपस्वी मुनि विश्वामित्र द्वारा तप-बल से बांधी गई अप्सराओं (देवताओं) के बंधन काटे थे। सत्य ही भगवान है। सत्य ही सबसे बड़ा तप है। सत्यवादी को स्वर्ग के देवता भी प्रेम से देखते हैं और उसकी सहायता करते हैं।

सत्य भाषा के पाँच गुण हैं—हित-हितकारी, मित (कम बोलना), प्रिय, सत्य, निरवद्य (जो हिंसात्मक नहीं है)।

विकथा

बहुत से मनुष्य अपना अधिकांश समय इधर-उधर की व्यर्थ की बातों में या विकथा में लगा देते हैं जिससे अनावश्यक बातों की आलोचना होती है। इसमें अनेक बार हमारे अन्दर ज्ञान की कमी के कारण अशुभ बातों की अनुमोदना और शुभ की निन्दा हो जाती है। हम व्यर्थ ही अशुभ कर्मों का बंध कर लेते हैं। कई लोग दूसरे स्त्री-पुरुषों की विकथा, देश की विकथा, या राज्य की विकथा करते हैं जिससे उनका कोई संबंध नहीं होता, जिसमें उनका ज्ञान भी नहीं होता। इससे वे अपने वार्तालाप से गलत लोकमत भी तैयार कर लेते हैं, जिससे हजारों मनुष्यों का अहित भी हो सकता है। वे अशुभ कर्मों का बंध करते हैं। अतः लोगों को विकथा से बचकर, दान, शील, तप और समता भाव (क्षमा) की घटनाओं और कथाओं का स्वाध्याय, आत्मध्यान और सिद्धों के ध्यान में अपना समय लगाना चाहिए जिससे पाप नष्ट हो, पुण्य की प्राप्ति हो और सिद्ध पद भी प्राप्त हो।

मोह पर चोट

आठों कर्मों में मोहनीय कर्म सबसे प्रबल और प्रधान है। इस कर्म ने गौतम गणधर के मन में तीर्थंकर महावीर के प्रति प्रशस्त राग पैदा करके कुछ समय तक उनके केवलज्ञान प्राप्ति के काम को रोक दिया। राग चाहे प्रशस्त हो या अप्रशस्त, वह आखिर है तो राग ही। मरुदेवी माता ने कोई त्याग पच्चखाण नहीं किया था। कोई भी व्रत धारण नहीं किया था। फिर भी उनको हाथी के ऊपर बैठे हुए ही और गृहस्थ वेश में ही केवल मोह के

सम्यक् सेवा का अर्थ यह है कि हमारे किसी काम से दूसरों के निर्वाह, ज्ञान प्राप्ति और आत्मोन्नति में बाधा नहीं पहुँचे किन्तु सहायता मिले। अनुकम्पा भाव या करुणाभाव या दयाभाव या शुद्धभाव का अर्थ है कि हमारे शरीर के हलन-चलन से, खाने-पीने से, उठने-बैठने से, आने-जाने से या हमारे वचनों से, वार्तालाप से या हमारे मन के विचारों से या भावनाओं से दूसरों को 1. दुःख नहीं पहुँचे, 2. उनका पतन नहीं हो, 3. उनको सुख मिले और 4. सुख के साथ-साथ उनकी आत्म-उन्नति हो। इन चार बातों का ध्यान रखकर सावधानीपूर्वक शरीर से, वचन से या मन से जो काम किया जाता है वह सेवा कार्य कहलाता है। वह सेवा अनुकम्पा भाव से की जाने वाली सेवा कहलाती है। यह सेवा महान तप है और मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है। इससे मोह टूट जाता है। मोह को तोड़ने के लिए नीचे लिखे पाँच सूत्रों को बार-बार दिन में कई बार दोहराइये, इनके अर्थ का चिंतन कीजिये, संतों से इस संबंध में चर्चा कीजिए और स्लेट या कॉपी में इन्हें बार-बार लिखिये। 1. मोह छोड़ो मोक्ष मिलेगा। 2. सभी जीव आत्मा है, केवल आत्मा है। 3. कोई किसी का हमेशा न हुआ न होगा। 4. दुःख दूर करने और सुख देने की शक्ति केवल शुभ कर्मों में ही है, परिवार के हाथ में नहीं है, अनुकम्पा भाव से की जाने वाली सम्यक् सेवा ही मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है।

कर्म कुटुम्ब के बदल न सकता।

चिंता मोह व्यर्थ में ही करता।।

कोई किसी का हुआ न होगा।

कर्म साथ नहीं रहने देगा।।

भावना की शक्ति

1. भावना में अनंत शक्ति है। हम अपने शरीर से जितनी हिंसा और पाप करते हैं उससे हजारों लाखों गुणा अधिक हिंसा और पाप किसी जीव को दुःख दिए बिना भी केवल अपने विचारों और गलत मानसिक परिणामों से कर लेते हैं।

2. एक मनुष्य पाँच प्राणियों को मारने का विचार दिन में 10 बार करता है, 20 दिन तक इस विचार को करता रहता है तो चाहे वह एक भी प्राणी को नहीं मारे किन्तु इस भावना से ही वह $5 \times 10 \times 20 = 1000$ (एक हजार) प्राणियों की हत्या के पाप का भागी बन जाता है।

शुभ की अनुमोदना आत्मा के उत्थान का कारण बनती है, किन्तु अशुभ की अनुमोदना महापरिग्रह, महाआरंभ, महाहिंसा, महायुद्ध, कसाई खानों का खोलना, महाहिंसक कारखानों आदि अशुभ कार्यों का अशुभ अनुमोदन प्राणियों के पतन का कारण बनता है। प्राणियों को दुःख देने और उनकी हिंसा कराने वाले कार्यों की अनुमोदना से हमेशा बचना चाहिए। कुछ आदमी दूसरों को खुश करने के लिए बड़े-बड़े मकानों और हिंसात्मक कारखानों की योजनाओं का अनुमोदन करते हैं वे अपने अज्ञान के कारण अशुभ कर्मों का बंध करते हैं।

हत्या के पाप से 'अलग

पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो, पतित उधारण हारो।

गौ, ब्राह्मण, प्रमदा, बालक की मोटी हत्या चारों।

तेहनों करन हार प्रभु भजने, होत हत्या से न्यारो

पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो।

पाप पराल को पुंज बन्यो अति, मानो मेरु आकारो।

सो तुम नाम हुतासन सेती सहजे प्रज्ज्वलत सारो।

पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो।

प्रभु के भजन से, सिद्धों के ध्यान से मुनि दृढ़ प्रहारी गाय, ब्राह्मण, स्त्री और बालक इन चारों की हत्या के पाप से न्यारा हो गया। सिद्धों के ध्यान में ऐसी महान शक्ति है। मुनि दृढ़ प्रहारी अनुकूल के राग से और प्रतिकूल के द्वेष से अलग होकर सिद्धों के ध्यान में लग गये और उन्होंने - पाँच महीने के अन्दर ही भूख-प्यास, शीत-ताप और लोगों से मिलने वाला दंड-त्रास समतापूर्वक सहकर और सिद्धों के ध्यान में लीन रहकर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

सिद्धों का ध्यान

णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं

णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं

ऊपर लिखे हुए नवकार मंत्र के पद को मन-मन में या धीमी-धीमी आवाज में बोलकर बार-बार दोहराते हुए भक्ति और विनयपूर्वक हाथ जोड़ते हुए सिर झुकाते हुए और नमस्कार करते हुए सिद्धों का ध्यान किया जाता है।

संसार में जितने भी तीर्थकर हुए हैं उन सबने सिद्ध पद पाया है। किन्तु वे अमूर्त होने के कारण देखे नहीं जा सकते। मैं उन सब सिद्धों को नमस्कार करता हूँ।

भेद—सिद्ध पन्द्रह प्रकार के होते हैं। तीर्थ सिद्धा, अतीर्थ सिद्धा, तीर्थकर सिद्धा, अतीर्थकर सिद्धा, स्वयं बुद्ध सिद्धा, प्रत्येक बुद्ध सिद्धा, बुद्ध बोधि सिद्धा, स्त्रीलिंग सिद्धा, पुरुष लिंग सिद्धा, नपुंसकलिंग सिद्धा, स्वलिंग सिद्धा, अन्य सिद्धा, गृहस्थलिंग सिद्धा, एक सिद्धा अनेक सिद्धा।

अन्यलिंग सिद्धा बताता है कि जैन धर्म में पक्षपात नहीं है और यह द्रव्य क्रिया की अपेक्षा भाव क्रिया को प्रधानता देता है। अच्छी भावना भाने वाले अन्य धर्म के लोग भी सिद्ध भगवान बन सकते हैं। गृहस्थ सिद्धा संकेत करता है कि सिर्फ साधु ही सिद्ध नहीं बनते, किन्तु गृहस्थ भी भाव साधु बनकर सिद्ध भगवान बनते हैं। जैसे कूर्मा पुत्र केवली को भी गृहस्थ दशा में केवलज्ञान प्राप्त हुआ था और वह छः महीने तक गृहस्थ पोशाक में ही रहा इसलिए कि उनकी माता को दुःख न हो। स्वयं बुद्ध बतलाता है कि विशुद्ध आत्म चिंतन करने वाला और चौबीसों घंटे आनन्दघन रहने वाला क्रोध, काम, मद, मोह छोड़ करके दूसरे उपदेशक से उपदेश पाए बिना भी केवल अपने-आप ज्ञाप प्राप्त करके सिद्ध बन सकता है।

आप ये चिंतन भी करिए कि इन सिद्धों ने अपने मनुष्य भव के जीवन में अलग-अलग प्रमुखता दी। किसी ने दान को प्रमुखता दी, किसी ने शील को प्रमुखता दी—जैसे सेठ सुदर्शन, विजय सेठ, विजया सेठानी। किसी ने तप को प्रमुखता दी—जैसे मल्लिनाथ भगवान, काली रानी आदि। किसी ने समता भाव (क्षमा) को प्रमुखता दी—जैसे मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य। किसी ने अपने किए हुए पापों का पश्चात्ताप करके मुक्ति प्राप्त की। ऐसे सिद्धों का ध्यान करने से, उनके गुणों का अनुमोदन करने से आप उन्हें अपने जीवन में उतारने की प्रेरणा पाएंगे।

समस्या—कुछ लोग कहते हैं कि किसी पदार्थ या प्राणी का ध्यान करने के लिए उस पदार्थ या प्राणी को या उसके मूर्त रूप को, रंग और अंग आदि को या उसकी तस्वीर को देखना आवश्यक है। इसके बिना उन पर दृष्टि जमाना और ध्यान को केन्द्रित करना कठिन है। सिद्ध भगवान अशरीरी है। उनका आत्म द्रव्य दिखाई नहीं देता। इसलिए सिद्धों का ध्यान करते समय हमारा मन इधर-उधर जाता रहता है और ध्यान केन्द्रित नहीं हो पाता।

के साथ बहुत समय तक रहा। उसे भी उनके दर्शन होते रहे किन्तु इन दर्शनों से उसके कर्मों का नाश नहीं हुआ। राजा श्रेणिक के साथ उसके सारथी ने भी भगवान महावीर और बहुत से संतों के दर्शन सिर्फ सभ्यता की मर्यादा निभाने के लिए भक्ति के बिना किए। जहाँ महाराज श्रेणिक के छः नारकीय कर्म नष्ट हुए वहाँ उनके सारथी के कुछ भी कर्म नष्ट नहीं हुए। उसे केवल काया कष्ट ही हुआ। केवल दर्शनों से ही भक्ति के बिना दर्शन करने वाले के कर्मों का नाश नहीं होता किन्तु उसके साथ जुड़ी हुई भावना, विनय भक्ति गुणानुराग आदि के कारण ही कर्मों की निर्जरा होती है। अतः ध्यान में महत्त्व इस बात का नहीं है कि हमें सिद्ध भगवान के कल्पित रूप के दर्शन होते हैं या नहीं। किन्तु महत्त्व इस बात का है कि हम सिद्ध भगवान के या जिन संतों या महापुरुषों के दर्शन करते हैं या नहीं या हमारे ऊँचे अचेतन मन में उनके गुणों के प्रति गुणानुराग है या नहीं।

यह भी सत्य है कि सिद्ध भगवान के आत्मद्रव्य को कल्पना के द्वारा देखने के प्रयास के बिना केवल उनके गुणों के चिंतन का अभ्यास कुछ दिनों तक किया जावे तो अरूपी सिद्धों के गुणों का चिंतन और ध्यान सम्भव हो सकेगा।

सिद्धों के ध्यान से हमारे अन्दर जो विकार हैं वे दूर होते हैं और हमें गुणों की प्राप्ति होती है। हमारे अशुभ कर्म, पाप रोग और दुःख नष्ट होते हैं और हमें सिद्ध पद की प्राप्ति होती है।

सेवा के नौ भेद

किसी भी कार्य को अच्छे या बुरे परिणामों से अच्छा या बुरा नहीं कहा जा सकता। उसको अच्छा या बुरा बताने की कसौटी है—उस कार्यकर्ता के मन में परिणाम यानी भावना। इस दृष्टि से सेवा के नौ प्रकार हो सकते हैं। उसमें प्रथम तीन सेवाभावी उत्तम दूसरे तीन मध्यम और अन्तिम तीन अधम प्रकृति वाले कहे जा सकते हैं।

1. उत्तम (क) कर्तव्य भावना

कर्तव्य भावना से प्राणी मात्र की सेवा करने वाले सर्वोत्तम सेवाभावी कहे जा सकते हैं। उन्हें किसी प्रकार की इच्छा नहीं होती, कामना नहीं होती। वे संसार को सही मोक्ष का मार्ग दिखाते हैं। इस श्रेणी में तीर्थंकर और पूर्ण त्यागी महापुरुष आते हैं। यह कर्तव्य भावना ही सर्वोत्तम सेवा भावना है।

(ख) ऋण मुक्ति भावना

इसमें वे व्यक्ति आते हैं जो वर्तमान और भूतकाल के बहुत से ज्ञात और अज्ञात व्यक्तियों के और समाज के उपकारों से अपने-आप को उपकृत मानते हैं और स्वयं को उनका ऋणी मानते हैं। इसीलिए वे प्राणी मात्र की सेवा निष्काम भाव से मान और अपमान, जीवन-मरण का ख्याल किए बिना अपना तन, मन, धन तीनों लगाकर दूसरों की सच्ची सेवा और उनका आत्महित करते हैं। इसमें त्यागी संत और निर्लोभी सेवा करने वाले व्यक्ति आते हैं। श्री जवाहराचार्य द्वारा लिखी गई मघा की कथा में यह बताया गया है कि वह निष्काम भाव से समाज की सेवा करता था। जब धूर्त राजकर्मचारियों ने राजा से उसकी शिकायत की और राजा ने उस मघा नामक व्यक्ति और उसके साथियों को कुचलने के लिए तीन बार मतवाले हाथी छोड़े तो तीनों ही बार वे हाथी उनको सूँघ-सूँघ कर ही वापस लौट गये। उन्हें कुचला नहीं। ऐसे समाज सेवियों को मनुष्य तो क्या पशु भी हानि नहीं पहुँचाते।

(ग) पुण्य कमाने की भावना

इस श्रेणी में वे व्यक्ति आते हैं जो अपने धन को औषधालय, अनाथालय, विधवाश्रम, वृद्धाश्रम, पाठशाला, ज्ञानशाला, पुस्तकालय, कुष्ठरोगी आश्रम आदि खुलवाने में लगाते हैं या इनमें चंदा देते हैं और उनमें सेवा कार्य करते हैं।

2. मध्यम (क) दबाव या भय

सेवा करने वाले इस श्रेणी में आते हैं। उनके मन में सेवा करने की इतनी भावना नहीं है जितनी की उस व्यक्ति को खुश रखने की भावना है, जिसके दबाव से या भय से वे सेवाकार्य में लगे हैं।

(ख) कीर्ति प्राप्ति की भावना

दान देने वाले या सेवाकार्य करने वाला या पाठशाला, औषधशाला खुलवाने वाले इत्यादि इस श्रेणी में आते हैं। वे संस्थाओं पर अपना नाम लिखवाते हैं और दूसरों की नजरों में अपने आपको बड़ा आदमी दिखाने की कोशिश करते हैं। यह एक प्रकार का अहंकार प्रदर्शन है। इससे अहंकार को पोषण मिलता है। अहंकार इतना भयंकर विकार और अवगुण है जो बाह्यबलीजी जैसे महातपस्वी को भी केवलज्ञान प्राप्त करने से रोक देता है।

अहंकार से अच्छी क्रियाओं का फल भी तुच्छ-सा बन जाता है। क्रोध के समान यह भी मनुष्य को ऊँचा नहीं उठने देता। यदि समाज के लिए दान देने वालों में यश प्राप्ति की भावना मिट जाय और निःस्वार्थ भाव से, निष्काम भाव से मान-अपमान और लाभ-हानि का ख्याल न रखकर, वे सेवाकार्य में लगे रहें तो वे मध्यम से निकल कर उत्तम श्रेणी में आ जाते हैं।

(ग) लोभ अर्थात् धन लाभ

सम्पत्ति कमाने की भावना से सेवाकार्य करने वाले इस श्रेणी में आते हैं। वे चाहते हैं कि हम समाज सेवा के लिए कुछ धन लगावें और बड़े-बड़े राजकर्मचारियों और समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों की नजरों में ऊँचे हो जावें तो इससे हमें व्यापार का लाइसेंस मिल जावेगा या कारखाने के लिए सस्ते दामों में जमीन मिल जावेगी या संस्थाओं में कुछ चीजें विक्रय करने का ठेका मिल जावेगा और हम जितना सेवाकार्य में खर्च करेंगे उससे अधिक कमा लेंगे। उनकी भावना दान देने की नहीं किन्तु धन कमाने की रहती है। यह व्यापार है। सच्ची सेवा नहीं है। इसे सेवा नहीं माना जा सकता। क्रिया का फल उससे जुड़ी भावना के अनुसार मिलता है। क्रिया के परिणाम से नहीं। यदि ऐसे व्यक्ति दान देते समय धन कमाने की भावना नहीं रखें तो वे मध्यम से उत्तम सेवाभावियों की श्रेणी में आ जाते हैं।

3. अधम (क) दुष्ट प्रकृति

जो व्यक्ति संस्था या समाज में फूट डलवाने की भावना से काम करते हैं और फूट डलवा देते हैं, वे अधम श्रेणी की सेवा करने वाले सेवाभावियों में आते हैं।

(ख) बदला लेने की भावना

जो व्यक्ति दूसरों से बदला लेने की भावना से किसी व्यक्ति या समाज की सेवा करता है तो वह भी अधम प्रकृति का व्यक्ति है।

(ग) स्वभाव

जो व्यक्ति समाज को लूटने या डुबाने की भावना से काम करते हैं वे भी इसी अधम श्रेणी में आते हैं।

निष्कर्ष—हमारा ज्ञान बहुत सीमित है। हम दूसरों के अन्तःकरण को देख नहीं सकते। इसीलिए किसी व्यक्ति को किसी श्रेणी में रखना भयंकर भूल है और यह अशुभ कर्म बंध का कारण बन जाता है। अतः आप विचारिये कि आप स्वयं किसी श्रेणी में हैं और किन दुर्भावनाओं को छोड़कर

क्या परिवार सेवा मोह है ?

इस संबंध में धारिणी महारानी के गर्भपालन के कार्य को जैन शास्त्रों ने अनुकम्पा बताया है जिसका उल्लेख आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. ने 'अनुकम्पा विचार' नामक पुस्तक में किया है कि धारिणी रानी ने अपने गर्भ का पालन मोह से नहीं वरन् अनुकम्पा से किया था। माताएँ अपने गर्भ का या संतानों का पालन-पोषण केवल मोह से या भविष्य में सुख पाने की आशा से ही नहीं करती किन्तु अपनी समझदारी से इन कार्यों को अनुकम्पा के कार्य और कर्म निर्जरा के कार्य भी बना सकती है।

कूर्मा पुत्र केवली ने केवलज्ञान प्राप्ति के बाद भी छः महीने तक घर नहीं छोड़ा केवल इसी भावना से कि उनके घर छोड़ने से उनकी माता को दुःख न हो। क्या केवली की माता को सुख पहुँचाने की भावना मोह से भरी हुई थी ? क्या यह उनका कर्तव्य नहीं था ?

[illegible]

इसमें से कुछ लोग अपने पुराने जन्मों के कर्जों को चुकाने के लिए या वसूल करने के लिए जन्म लेकर या विवाह संबंध जोड़कर एक परिवार में आते हैं। अतः परिवार वालों का कर्ज चुकाना अपना कर्तव्य है। इसे यह कहना कि मैं परिवार की सेवा कर रहा हूँ भूल है। यह सेवा नहीं है। इसे हम सेवा कहते हैं लेकिन यह तो सिर्फ ऋणमुक्ति है। कर्मों के विधान के अनुसार हम इससे बच नहीं सकते। इसमें कोई रियायत भी नहीं हो सकती। पिछले जन्मों का कर्ज शत-प्रतिशत माप, तोल और गिनकर पूरा का पूरा चुकाना पड़ता है। यह कर्ज कर्म अवधि पक जाने पर, कर्मोदय होने पर, कर्ज की देय तिथि आने पर चुकाना पड़ता है। इसे जो व्यक्ति हंस-हंस कर चुकाता है वह इस कर्ज से मुक्त हो जाता है और जो हंस-हंस कर नहीं चुकाता उसे यह कर्ज रो-रो कर चुकाना पड़ता है। इस हालत में जो व्यक्ति इसे सेवा कहता है वह उसकी भूल है क्योंकि सेवा इच्छा से की जाती है रो-रो कर नहीं।

जो व्यक्ति यह समझते हैं कि ये मेरे भाई हैं, ये मेरी बहिने हैं, ये मेरे माता-पिता हैं या ये मेरे पुत्र-पुत्री हैं, वह झूठे परिवार के मोह में फँसता है। इसे कोई परिवार भले ही समझे किन्तु यह परिवार जैसी बात नहीं है। यह तो पिछले जन्मों के कर्जों को चुकाने व वसूल करने वाले हैं।

कुछ लोग सोचते हैं कि मैं परिवार की या समजा की या गरीबों की बहुत सेवा करता हूँ। ऐसे समय में उसे अहंकार न करते हुए यह सोचना चाहिए कि यदि मैं निःस्वार्थ भाव से सेवाकृति में लगा रहा तो मेरे विशेष कर्मों की निर्जरा होगी, जिससे पूर्वकृत अशुभ कर्म टूटेंगे। नये शुभ कर्मों का बंध होगा।

समझदार लोग इस ऋण मुक्ति कार्य को इस भावना से इसे अनुकम्पा के कार्य में बदल देते हैं कि ये परिवार वाले, समजा वाले और दूसरे लोग आत्माएँ हैं। मेरा कर्तव्य है कि मैं सावधानी रखूँ कि इन आत्माओं को दुःख न हो, कष्ट न हो, इनको असाता न पहुँचे, इनका पतन नहीं हो किन्तु इनका भला हो, इनको सुख पहुँचे और इसके साथ-साथ इनकी आत्मोन्नति हो। उत्कृष्ट सेवाभावना से तीर्थंकर नाम गोत्र कर्म का बंध होता है, ऐसा भगवान महावीर ने फरमाया है।

नोट—दूसरों से सेवा कराना कर्जदार बनना है। अतः जहाँ तक सम्भव हो अपना कार्य स्वयं करना चाहिए।

शीलव्रत का पालन

जैनागमों में शील पालन को बड़ा महत्त्व दिया है। शील पालन से विजय सेठ, विजया सेठानी ने और सेठ सुदर्शन ने सिद्ध पद प्राप्त किया। जैन साधु-साध्वी, के लिए तो बड़े कठोर नियम बनाये गये हैं। जैन साधु किसी साध्वी, स्त्री या एक माह की लड़की से वस्त्रों द्वारा स्पर्श होने से भी बचता है। इसी प्रकार जैन साध्वी किसी साधु, पुरुष या एक माह के बालक के वस्त्रों द्वारा स्पर्श होने से भी बचती है। यदि भूल से या असावधानी से वस्त्रों द्वारा भी स्पर्श हो जाता है तो उन्हें दंड प्रायश्चित्त लेना पड़ता है।

यह शरीर से द्रव्य शील पालन हुआ। मन से भाव शील पालन में पुरुष वृद्ध पर-स्त्री को माता, छोटी बालिका को पुत्री अपने समान उम्र वाली स्त्री को बहन के समान समझे। इसी प्रकार स्त्रियाँ वृद्ध पर-पुरुष को पिता, छोटे बालकों को पुत्र और अपने समान उम्र वाले पुरुषों को भाई के समान समझें। यह पिता-पुत्र, भाई की भावना और माता-पुत्री, और बहिन की भावना पुरुष और स्त्रियों को शील पालने में बहुत सहायक होती है। अतः ये मेरे पिता-पुत्र भाई है या मेरी माता-पुत्री बहिन हैं इस भावना को बार-बार दोहराने से, इसका बार-बार चिंतन-मनन करने से और इसका जप करने से ये भावनाएँ अचेतन मन में बैठ कर साधकों को दृढ़ शीलव्रतधारी बना सकती है। शील पालन के लिए कोई भी स्त्री किसी पर-पुरुष के और कोई भी पुरुष किसी पर-स्त्री के शरीर, चेहरे और विशेष कर उसकी आँखों की ओर और उनके 1. चित्रों को नहीं देखे, नहीं देखे, नहीं देखे। 2. उनके पास नहीं बैठे। 3. नहीं ठहरे। 4. जरूरी कार्य के बिना उनके पास नहीं रहे। 5. उनसे अनावश्यक बातें या हँसी-मजाक नहीं करे। 6. एकांत में उसके साथ नहीं ठहरे। 7. जब कभी उनसे मिलने का मौका पड़े तो माता-पुत्री बहिन की भावना या पिता-पुत्र भाई की भावना को रटते रहें या, 8. विजय सेठ, विजया सेठानी की शीलपालन की घटना को याद करते रहें। 9. उत्तेजक पदार्थों के सेवन और शृंगार से बचकर सादा जीवन शील पालन में बड़ा सहायक है।

पश्चात्ताप की विधि

अपने पूर्वकृत पापों का पश्चात्ताप तीन चरणों में किया जा सकता है। प्रथम चरण में—1. घटना की स्मृति एवं मन में खेद, 2. अपना दोष देखना, 3. भगवान से सुबुद्धि की प्रार्थना।

या एक उपवास तप करूंगा। यदि सम्भव हो तो धर्मगुरु या श्री आचार्य भगवन् को घटना बताकर दंड प्रायश्चित्त लूंगा।

तृतीय चरण भविष्य में सावधानी रखना—

1. भविष्य में मैं पूरी सावधानी रखूंगा कि मुझसे ऐसा काम न हो।

2. यदि मुझसे कभी ऐसा अपराध होगा तो मैं इस पाप को नष्ट करने या हल्का करने के लिए दुगुना प्रायश्चित्त लूंगा।

3. इस अवगुण को दूर करने के लिए मैं मुनिश्री गजसुकुमाल, मुनिश्री मैतार्य, मुनिश्री अर्जुनमाली आदि की समताओं की घटनाओं का प्रतिदिन स्वाध्याय करूंगा।

ऊपर नमूने का एक उदाहरण दिया गया है। पश्चात्ताप करने वाला व्यक्ति अपनी सुविधा के अनुसार इसे घटा-बढ़ा या बदल सकता है।

स्वाध्याय के सूत्र

इन सूत्रों को आप प्रतिदिन बार-बार दोहराइये और इनके अर्थ पर चिंतन करिये जिससे ये अवचेतन मन में बैठ सकें और स्थिर भावनाएँ बन सकें।

1. सेवा—परिवार के लोगों को मेरा भाई है, ऐसा नहीं समझकर यह केवल आत्मा है, ऐसा मानकर अनुकम्पा भाव से उनकी सम्यक् सेवा करनी चाहिए।

2. दंड—किसी को इसके अपराध के लिए दंड देने का अधिकार मुझे नहीं अपितु कर्मों को है।

3. क्रोध—दुःख अपने अशुभ कर्मों से मिलता है, उसमें निमित्त बनने वाले को दोष क्यों दूं ? उस पर क्रोध क्यों करूं, उससे लड़ाई क्यों करूं ? वह तो मेरे कर्मरोग काटने की अचूक दवा देने वाला मित्र है। उपकारी डॉक्टर है। परमात्मा उसका भला करे।

4. दुःख—(क) दुःख मुझे अशुभ कर्मों से मिलता है। समता रखने से यह मेरे कर्मरोग काटने की दवा बन जाएगा। इस दवा को दुःख गागना और रोना भूल है, पाप है। (ख) दुःख कर्मों की निर्जरा कराता है, अज्ञान को हटाता है। मोह को हटाता है और धर्म में श्रद्धा पैदा कराता है। यह उपकारी शिक्षक है।

12. माया—सत्य व्रतधारी अर्थात् मन, वचन, काया की सरलता वाला देवताओं से सहायता पाता है और वह मोक्ष या स्वर्ग पा सकता है।

13. शील—परस्त्री (मेरी) माता या पुत्री या बहनों के समान है।
(ख) उसके अवगुण नष्ट होते हैं और गुण प्रकट होते हैं।

14. गुण दर्शन—दूसरों में गुणों को देखने वाले का अहंकार दूर होता है और उसमें विनय भाव पैदा होता है।

15. देह—आत्मभेद ज्ञान या आत्मा भावना यह शरीर अलग है और मैं (आत्मा) अलग हूँ। शरीर का सुख-दुःख मेरा (आत्मा) का सुख-दुःख नहीं है। इस सूत्र को बार-बार जपने से इस भावना के अचेतन मन में बैठ जाने से दुःखानुभूति मिट सकती है।

16. सिद्धों का ध्यान—“णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं।

देहासक्ति से मुक्ति

सिद्ध पद प्राप्त करने के लिए सब कर्मों की निर्जरा आवश्यक है और सब कर्मों की निर्जरा तभी सम्भव है जब देह की आसक्ति छूट जाये और काया-कष्ट, समताभाव से सहन किया जा सके। ऐसी सहन-शक्ति दो प्रकार से प्राप्त होती है—1. अभ्यास से और 2. भावना से।

1. सहन-शक्ति प्राप्त करने के लिए नवकार मंत्र से पोरसी, एकत, उपवास, आर्यबिल आदि तप किया जा सकता है। 2. अपने सभी काम अपने हाथ से करके स्वावलंबी बना जा सकता है। 3. जो काम अपने शरीर से हो सके, उसके लिए मशीनों का प्रयोग कम से कम किया जाये। 4. शीत ताप, भूख-प्यास, मक्खी-मच्छर आदि के उपद्रव समताभाव से सहन किया जाये। 5. घर के सभी कार्यों में परिवार की सहायता श्रम पूर्वक कष्ट अनुभव किए बिना की जाए। रोग आदि में कष्ट को समताभाव से सहा जाए। और 6. उपसर्गों व कष्टों को समतापूर्वक सहन किया जाए।

सहनशक्ति बढ़ाने का दूसरा और प्रभावशाली उपाय है—भावना द्वारा देह की आसक्ति को तोड़ना और सहनशक्ति बढ़ाना। इसके लिए स्वाध्याय किया जा सकता है। इसके लिए सूत्र इस प्रकार है—

1. शरीर अलग है और मैं (आत्मा) अलग हूँ।

2. शरीर मेरा नहीं है। यह नाशवान है।

3. उपसर्ग और काया कष्ट समताभाव से सहन करने से देहासक्ति टूट जाती है।

4. मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य आदि की समता भावना और काया कष्ट सहने की घटनाओं का अध्ययन, चिंतन मनन और स्वाध्याय किया जाये।

5. उपसर्ग या कष्ट के समय केवल यही भावना दोहराता रहे कि मेरा पाप कट रहा है, कटने दो। या

6. मेरे कर्मों की निर्जरा हो रही है, होने दो।

इन अन्तिम दो सूत्रों का चिंतन करने से कष्ट भूलाया जा सकता है।

इस प्रकार अभ्यास और भावना से, सहनशक्ति बढ़ने से काया कष्ट समता भाव से सहन किया जा सकेगा, जिससे कर्मों की निर्जरा होगी। आत्मा की शुद्धि व सिद्ध-पद की प्राप्ति होगी।

सच है कि "यह शरीर किसी प्राणी का अपना न हुआ है न होगा।"

भाव तरंगों की शक्ति

दवा शरीर का रोग दूर करती है और केवल शुद्ध भाव तरंगे शरीर का रोग और चरित्र के दोष दोनों को दूर करती है। प्राणी के शुभ कर्मों का उदय होने से ही दवा काम करती है। भाव तरंगे उस समय असफल होती है, जब भाव तरंगें भेजने वाले व्यक्ति की—1. भाव तरंगों के संबंध में पूरी जानकारी नहीं हो। 2. भाव तरंगें भेजते समय एकाग्रता की कमी हो। 3. भाव तरंगों की शक्ति में पूर्ण श्रद्धा नहीं हो। 4. वह धैर्य न रखकर सफलता होने से पूर्व ही उसे छोड़ दे।

एकाग्रता श्रद्धा और धैर्य से भाव तरंगों की शक्ति बढ़ जाती है। अणु से परमाणु में, स्थूल से सूक्ष्म में और दवा से भाव तरंगों में अधिक शक्ति होती है। क्रोधी मित्र को लगभग अर्द्धरात्रि के समय जबकि उस क्रोधी मित्र के नींद में होने की सम्भावना हो, ये भाव तरंगें भेज सकते हैं—“मित्र (उसका नाम लीजिए) क्रोध छोड़ो समता धारो।” या “भाई ! (उसका नाम लीजिये) तुम स्वस्थ हो, निरोग हो, तुम्हारा रोग दूर हो रहा है।” भाव तरंगें भेजते समय इस बात का ध्यान रखें कि मानो आप उसके कान में ही कह रहे हो जिससे कि एकाग्रता बनी रहे।

कषाय - मुक्ति चौथा भाग

आदर्श सेठ

प्राचीन काल में दिल्ली नगर में धर्मदास नाम का सेठ रहता था। उसके चार पुत्र थे। जब वह बूढ़ा हुआ तो उसने कुछ धन अपने पुत्रों में बाँट दिया और कुछ धन अपने पास रख लिया। जब वह किसी व्यक्ति को आर्थिक दृष्टि से कमजोर देखता तो वह गुप्त रूप से पाँच हजार रुपये दे देता और उसे ईमानदारी से व्यापार करने को कहता। इस प्रकार उसने बहुत से लोगों के जीवन निर्वाह और आत्म उत्थान में सहयोग दिया।

जब वह बीमार हुआ तो जिन लोगों की धर्मदास ने मदद की, उनमें से कुछ लोग रुपये लौटाने के विचार से आए तो सेठ धर्मदास ने उनकी बातें सुनकर उनसे कहा—“भाई साहब यदि आप अपने ऊपर मेरा एहसान मानते हैं तो मेरी एक बात मानिये। यह रुपये आप मुझे न देकर धरोहर के रूप में अपने पास रखिए और गुप्त रूप से जितने व्यक्तियों की सहायता कर सकें, करें। यही मेरी सच्ची सेवा है और सच्चा धर्म है।”

आये हुए सभी लोगों ने यह प्रण किया कि आपके बताए हुए आदर्श मार्ग पर चलकर हम दूसरों के जीवन निर्वाह, ज्ञान प्राप्ति और आत्मोन्नति में निमित्त बनने की पूर कोशिश करेंगे।

यह सुनकर सेठ धर्मदास ने एक गहरी सांस ली और बोले—मैंने देखा है जिस घर में गरीबी और भूखमरी आ जाती है वह घर लड़ाई-झगड़े का घर बन जाता है, उसमें मारपीट होने लगती है। यहाँ तक कि आत्महत्या या दूसरों की हत्या तक क्रोध में कर दी जाती है। वह घर हिंसा का घर बन जाता है और सबके भारी कर्म बंधते हैं। ऐसे घर को गुप्त रूप से मदद देने वाला, उस घर को स्वर्ग और धर्मस्थानक-सा बनाने में निमित्त बन कर स्वयं भी महापुण्य का भागी बनता है। गुप्तदान संसार में एक महान सेवा तप है।

मुनि गजसुकुमाल

बहुत पुरानी बात है। एक पुरुष के दो पत्नियाँ थी। वे दोनों समझदार थी और मिल-जुलकर प्रेम से रहती थी। कुछ वर्षों के बाद छोटी बहू के पुत्र हुआ जिससे घर में उसका मान-सम्मान बढ़ गया। यह बात बड़ी बहू को बुरी लगी और उसने उस पुत्र को मारने का विचार किया।

एक बार उस लड़के के सिर में बड़े-बड़े फोड़े हो गए। छोटी बहू भोली-भाली और सीधी-सादी थी। उसने पुत्र की दवा का काम बड़ी बहू पर छोड़ दिया। बड़ी बहू ने उस पुत्र को मारने के विचार से जान-बूझकर आटे की एक बहुत गर्म रोटि उस लड़के के सिर पर बाँध दी जिससे वह लड़का मर गया। आगे जाकर उस बड़ी बहू का जीव निन्यानवे लाख जन्मों के बाद द्वारिका नगरी में महारानी देवकी के गर्भ से पुत्र रूप में जन्मा और उसका नाम रखा गया गजसुकुमाल। छोटी बहू का वह लड़का मर कर संसार में भटकता हुआ द्वारिका नगरी में एक ब्राह्मण के घर में पैदा हुआ और उसका नाम रखा गया सोमिल। इसी सोमिल ने अपने पुराने वैर का बदला लेने के लिए मुनि गजसुकुमाल के सिर पर श्मशान भूमि में अंगारों को रखकर अपना बदला लिया।

कहा जाता है कि गजसुकुमालजी जब सोलह वर्ष के हुए तब एक दिन वे हाथी पर बैठकर श्रीकृष्णजी के साथ भगवान तीर्थकर श्री नेमिनाथजी के दर्शन करने गए। रास्ते में सोमिल की पुत्री सोमा खेल रही थी। वह बहुत सुन्दर थी अतः श्रीकृष्णजी ने सोमिल ब्राह्मण से सोमा का विवाह गजसुकुमाल के साथ करने की बात कर उसे विवाह से पहले ही राजमहल में भिजवा दिया। उधर तीर्थकर नेमिनाथजी की वाणी सुनने से गजसुकुमाल को वैराग्य हो गया। उन्होंने तुरन्त ही दीक्षा ली और भगवान नेमिनाथजी से शीघ्र मोक्ष पाने का मार्ग पूछकर उनसे आज्ञा लेकर श्मशान भूमि में चले गए। उसी समय सोमिल भी वहाँ आया। अपनी लड़की को इस प्रकार छोड़ देने के कारण मुनि गजसुकुमाल के ऊपर सोमिल को बहुत क्रोध आया और उसने गजसुकुमाल के सिर के ऊपर भीगी मिट्टी की पाल बाँधी और पास ही जलते हुए मुर्दे की एक चिता से जलते हुए अंगारे उठाए। उन्हें गजसुकुमालजी के सिर पर रखा और चला गया। मुनि गजसुकुमालजी क्षमा और समता की साक्षात् मूर्ति थे। वे ध्यान में लीन हो गए। उनके ध्यान का मुख्य भाव यह था—स्वयं के किए हुए कर्मों से ही सुख-दुःख की प्राप्ति होती रहती है, जरूर किसी जन्म का वैर सोमिल के साथ रहा होगा तभी

उसने ऐसा बर्ताव किया है, इस वक्त मैं यदि समभाव रखूंगा तो मेरे कर्मों का नाश होगा, ऐसा ही हुआ। उन्होंने समस्त कर्मों का नाश कर मुक्ति पा ली।

किया स्वयं का स्वयं ही पाता।

क्रोध दुःख मन में क्यों आता।।

दृढ़ प्रहारी

कभी-कभी महाहिंसा करने वाले प्राणी भी अपने पूर्वजन्म में किए हुए अच्छे कर्म के प्रभाव से अचानक उसी जन्म से मोक्ष पहुँचने वाले मुनि बन जाते हैं। यही बात दृढ़ प्रहारी के साथ घटी। वह अचानक ही चोर और हत्यारे दृढ़ प्रहारी से समीक्षण ध्यानी मुनि दृढ़ प्रहारी बन गए। दृढ़ प्रहारी एक अच्छे घर में उत्पन्न हुए थे। वे अपने माता-पिता के साथ कभी-कभी साधु-साध्वियों के दर्शन करने और उनके प्रवचन सुनने भी जाते थे। किन्तु कुसंगति के कारण वे शराब पीने, चोरी करने लगे और विरोध करने वाले की हत्या कर देते थे। इस कारण घर से निकाल दिए गए। उसके बाद वे चोर-डाकू बन गए। एक दिन वे डाका डालने के लिए एक ब्राह्मण के घर गए। घर में एक गाय खुली थी। वह रम्माने (रेंकने) लगी। दृढ़ प्रहारी ने सोचा कि लोग जग जायेंगे, तो उसने एक ही चोट में उसके सिर को धड़ से जुदा कर दिया। इसी समय बाहर से ब्राह्मण आया। पकड़े जाने के भय से दृढ़ प्रहारी ने उसे भी मार दिया। उसके बाद दृढ़ प्रहारी अन्दर गया, तब ब्राह्मणी ने कहा—“तूने मेरी गाय को मार दिया, तूने मेरे पति को मार दिया, अब तू मुझे क्यों जिन्दा छोड़ता है। मैं क्या खाऊंगी, मैं किसके सहारे रहूंगी ?” तब दृढ़ प्रहारी ने सोचा कि कहीं यह शोर न मचा दे। इसलिए उसने उसे भी मार दिया। सगर्भा ब्राह्मणी तो मर गई परन्तु तलवार के साथ गर्भस्थ बालक टुकड़े-टुकड़े होकर बाहर निकलकर गिर गया। इस हत्या को देखकर दृढ़ प्रहारी का हृदय कांप उठा। तलवार उसके हाथ से छूट गयी। वह विचारने लगा—“हाय-हाय ! मैंने चार हत्याएँ कर डाली। मैंने पहले भी बहुत हत्याएँ की हैं, अनेक बच्चों को अनाथ किया है, महिलाओं को वैधव्य का दुःख दिया है, लोगों का धन लूट कर उन्हें दाने-दाने के लिए मोहताज बनाया है। मेरा इन पापों से छुटकारा कब और कैसे होगा ?”

दृढ़ प्रहारी ने पहले बहुत अच्छे कर्म किए होंगे। उन कर्मों के उदय से उसके विचार एकदम बदल गए और उसने हत्यारे दृढ़ प्रहारी से मुनि

दृढ़ प्रहारी बनने का संकल्प कर लिया। दृढ़ प्रहारी ने संकल्प किया—

1. मैं सिद्ध पद प्राप्त करूंगा। 2. मैं मेरे किए हुए पाप कर्मों का प्रायश्चित्त करूंगा और उसका फल भोगूंगा। 3. नगर के दरवाजे के पास खड़ा रहकर भूख, प्यास, शीत, तप सहन करूंगा। 4. इस रास्ते से आने वाले लोगों का मैंने अपराध किया है। उनके और दूसरे लोगों के भी कटु वचनों, गालियों, थपड़ों और मुक्कों को सहन करता हुआ समता रखूंगा और कर्मों का काटूंगा। यह शरीर अलग है और मैं अलग हूँ, फिर इस शरीर के कष्टों को अपना दुःख मानकर मैं नवीन कर्म नहीं बाधूंगा। 5. मैं दिन भर प्रभु के भजन में, सिद्धों के ध्यान में और ज्ञान के स्वाध्याय में लीन रहूंगा, जिससे मुझको लाभ होगा। प्रथम तो इससे शरीर के कष्ट भूलने में सहायता मिलेगी, दूसरे प्रभु के ध्यान से सभी पाप नष्ट होंगे। मेरी इस वर्तमान स्थिति में यही समीक्षण दृष्टि है और संक्षेप में मेरे लिए यही समीक्षण ध्यान है, जिससे मैं सिद्ध पद प्राप्त करूंगा।

बाहुबलीजी ने तो अहं भाव से 12 महीने तक तप किया था किन्तु दृढ़ प्रहारीजी ने अहंकार छोड़कर 5 महीने तक समीक्षण ध्यान किया और केवलज्ञान प्राप्त किया। अन्त में समीक्षण ध्यानी मुनि दृढ़ प्रहारी ने देह त्याग कर सिद्ध पद प्राप्त किया।

सिद्ध बनूंगा, सिद्ध बनूंगा ।

आनन्दघन और अभय बनूंगा ।।

आत्मा हूँ मैं, देह भिन्न हूँ ।

दुःखी नहीं हूँ आनन्दधन हूँ॥

नमो सिद्धाणं, नमो सिद्धाणं ।

नमो सिद्धाणं, नमो सिद्धाणं ।।

मुनि अर्जुनमाली

जिस अर्जुनमाली ने एक हजार एक सौ इकचालीस मनुष्यों की हत्या की, वह अर्जुनमाली भगवान महावीर के पास दीक्षा लेकर मुनि अर्जुनमाली बन गया और समीक्षण ध्यान से मोक्ष प्राप्त कर लिया। प्रथम उसने निश्चय किया कि मुझे सिद्ध पद प्राप्त करना है। दूसरी बात वह अपने पापों को याद करके उनके लिए पश्चात्ताप करता है। तीसरी बात, वह सोचता है—“मैंने बहुत लोगों को दुःख दिया, अनाथ बनाया, बरबाद किया, बहुतों की हत्या की, अनेक घर उजाड़े। फिर भी ये लोग बड़े दयालु दिखते हैं। मुझे थोड़ा-सा दंड देकर छोड़ देते हैं। मैं स्वयं ही स्वयं के किए का फल पा

रहा हूँ। ये मुझे हल्का-सा दंड देने वाले, तो केवल निमित्त बने हैं। इन पर क्रोध क्यों करूँ ? मुझे यह जो हल्का काया-कष्ट मिल रहा है, वह भी तो मैंने स्वयं ने ही मोल लिया है। इससे तो मेरे कर्म कट रहे हैं फिर इसे दुःख क्यों माना जाए, समभाव से सारे कर्म कटते हैं—

किया स्वयं का, स्वयं ही पाता।

क्रोध दुःख मन में क्यों आता।।

मुनि अर्जुनमाली ने उपर्युक्त भावना का स्वाध्याय करीब छः महीने तक किया जिससे उनका क्रोध समूल नष्ट हो गया, दुःखानुभूति बिलकुल मिट गई और वे आनन्दघन बनकर सिद्ध बन गये। आनन्दघन का अर्थ है—जिसको आनन्द ही आनन्द हो, कोई दुःख न हो।

आत्मा हूँ मैं, देह भिन्न हूँ।

दुःखी नहीं मैं, आनन्दघन हूँ।।

मृगा पुत्र (मृगा लोढ़ा)

एक राजा था। उसका नाम विजयवर्द्धन था। वह बहुत बुद्धिमान और धर्मात्मा था। उसकी रानी मृगादेवी बहुत समझदार और धर्मात्मा थी। उनके एक पुत्र था। उसका नाम था मृगा पुत्र। उसके हाथ, पैर आँख, कान नहीं थे। वह एक गुप्त स्थान में पड़ा रहता था। वहीं पर वह खाता-पिता था। वहीं पर मल-मूत्र त्याग करता था। रानी उस कमरे की सफाई का पूरा ध्यान रखती थी। किन्तु फिर भी वहाँ इतनी बदबू आती थी कि उस कमरे में आने वाले को नाक पर कपड़ा रखना पड़ता था। राजा और रानी दोनों ही मृगापुत्र की इस दशा पर दुःखी थे। मृगापुत्र ने अपने पूर्व जन्मों में बड़े-बड़े पापों का संचय किया था, जिससे उसको ऐसा शरीर मिला जिसकी चिकित्सा होना संभव ही नहीं था।

भगवान महावीर के मुँह से मृगापुत्र का वृत्तान्त सुनकर गणधर गौतम स्वामी, महावीर भगवान की आज्ञा लेकर उसे देखने के लिए राजमहल में पधारे। राजा और रानी ने गौतम स्वामी को देखकर हाथ जोड़कर सिर झुका कर नमस्कार किया और उनसे निवेदन किया—“आज हमारे महाभाग्य हैं कि आपने पधार कर हमारा घर पवित्र किया। गौतम स्वामी ने मृगादेवी के पुत्रों को देखने की इच्छा प्रकट की तब मृगादेवी ने अपने स्वस्थ और सुन्दर पुत्रों को लाकर दिखाया, तब गौतम स्वामी ने कहा—“देवानुप्रिय ! मैं तुम्हारे उस पुत्र को देखना चाहता हूँ जिसका शरीर विकृत है। तब रानी उन्हें आदरपूर्वक उस गुप्त स्थान में ले गई जहाँ मृगापुत्र बैठा था। गौतम

बुलाया लेकिन वे भी कुछ न कर सके। उनके माता-पिता, भाई-बहिन भी दिन-रात उनके दर्द को दूर करने का उपाय करते रहे लेकिन वे भी कुछ न कर सके। उनकी पत्नी भी आँखों से आँसू बहाते हुए उनकी सेवा में लगी, लेकिन कोई भी आँखों का दर्द नहीं मिटा सका।

यह तो उनके पूर्वजन्म में किये हुए पाप का फल था जो अब उदय में आकर उनको दुःख दे रहा था। कोई भी प्राणी किसी दूसरे प्राणी के कर्म रोग को मिटाने की शक्ति नहीं रखता।

शक्ति है केवल निज कर्मों में।

दुःख देने की पाप कर्म में।

अशुभ कर्म जब उदय में आता।

अन्य कोई सुख दे नहीं पाता।।

कर्मों के रोग धन से या किसी भी अन्य पुरुष से मिटाये नहीं जा सकते। यदि कोई एक पुरुष दूसरे पुरुष का रोग या दुःख दूर कर सकता तो आज संसार में एक भी प्राणी रोगी या दुःखी नहीं रहता। कर्मों का रोग, दान, शील, तप आदि बड़ी-बड़ी उत्कृष्ट भावनाओं और वैसी ही क्रियाओं से मिट सकता है। एक रात्रि के समय अनाथी मुनि ने गृहस्थ अवस्था में संकल्प किया—यदि मैं इस दुःख से छुटकारा पा लूंगा तो मैं दीक्षा लेकर पूर्ण समता रखकर परमात्मा पद पाने की कोशिश करूंगा।

सवेरे उनके नींद से जागने पर उनके परिवार वालों को बहुत आश्चर्य हुआ कि जो रोग दवाओं से नहीं गया, वह अचानक दूर कैसे हो गया तो उन्होंने जवाब दिया कि दुःख और रोग उत्कृष्ट भावना, धर्म की भावना और धर्म करने से दूर होता है, अब मैं दीक्षा लेकर अपनी आत्म-शुद्धि करूंगा।

उनके घर वालों ने उनको बहुत समझाया कि घर में रहकर कुछ दिन तक माता-पिता की सेवा करो लेकिन उन्होंने अपने माता-पिता से कहा कि कोई किसी का नाथ नहीं बन सकता और किसी का दुःख दूर नहीं कर सकता। प्राणी स्वयं ही अच्छे कर्म करके अपना नाथ बन सकता है। संसार में सब अलग-अलग है। कोई किसी का अपना हमेशा के लिए नहीं बन सकता क्योंकि अलग-अलग मनुष्यों के अलग-अलग कर्म होते हैं। वे कर्म उनको हमेशा साथ नहीं रहने देते। पुराने जन्मों का परस्पर लेन-देन समाप्त हो जाने पर उनके कर्म उनकी मृत्यु से पहले ही उन्हें अलग-अलग कर देते हैं और मृत्यु तो उनको अपना बनने ही नहीं देती।

क्रोधी स्वभाव के कारण आश्रमवासी उसे अकेला छोड़कर अन्यत्र चले गये। वह अकेला रहता था। एक बार एक राजकुमार ने उसे चिढ़ाया, जिससे वह चिढ़ कर उसे मारने के लिए दौड़ा। वह क्रोध में बेभान था और गड्ढे में गिरकर मर गया।

क्रोध से मरण के कारण वह सर्प बन गया और जंगल में मार्ग के पास ही एक बिल में रहने लगा, जो कोई मनुष्य उस रास्ते से जाता उसे वह सर्प विष दृष्टि से देखता और उसके देखते ही व्यक्ति मर जाता। अतः उसका नाम भी चण्डकौशिक पड़ गया।

एक दिन भगवान महावीर उस चण्डकौशिक को समझाने के लिए जा रहे थे। लोगों ने उन्हें रोकना चाहा लेकिन वे रुके नहीं और जहाँ सर्प था वहाँ चले गये। चण्डकौशिक ने उन्हें विष दृष्टि से मारना चाहा, लेकिन इससे कुछ नहीं हुआ। तब सर्प ने उन्हें काटा। जब इसका भी कोई प्रभाव नहीं हुआ तब सर्प ने महावीर स्वामी को आश्चर्य से देखा।

भगवान महावीर ने कहा—“अरे चण्डकौशिक ! समझ कि तू पहले कौन था और अब तू कौन हो गया है और क्या करता है।” भगवान के इन वचनों को सुनकर चण्डकौशिक को ज्ञान हो गया और उसने सोचा कि इससे पूर्व जन्म में मैं एक साधु था किन्तु क्रोध के कारण मैं सर्प बन गया। मैंने अनेक मेंढक, चूहों, पशुओं और मनुष्यों की हत्या की है। मैंने सर्प बन कर नरक ले जाने वाले पाप किये हैं। ये सच है कि क्रोध नरक ले जाने वाली सीढ़ी है। क्रोधी मनुष्य मरकर सर्प बन जाता है। क्रोध मनुष्य को भले बुरे काम की पहचान नहीं सीखाता। मेरे किसी पूर्व जन्म में किये हुए पुण्य से मुझे भगवान महावीर के दर्शन हुए और यह अपूर्व ज्ञान मिला। अब मैं पूर्ण समता रखकर अपने कर्मों को काटूंगा और अपना जीवन सुधारूंगा।

चण्डकौशिक ने अपना सिर बिल में रख लिया और शरीर बाहर रख लिया। लोगों ने उसे बिलकुल शांत देखकर यह समझा कि यह चण्डकौशिक देवता हो गया है। उन्होंने उस पर दूध और बताशे चढ़ाए जिससे चींटियाँ आकर उसके शरीर को काटने लगी। इस भयंकर दर्द में भी चण्डकौशिक ने क्रोध न करके पूर्ण समता रखकर सहन किया जिससे उसके अनेक पाप कट गये।

सच है क्रोध से प्राणी के अच्छे-अच्छे गुण नष्ट हो जाते हैं और वह मुक्ति पाने का अधिकार खोने लगता है।

कालसौकरीक कसाई

एक बार राजा श्रेणिक ने भगवान महावीर से कहा—“मेरे पापों के नष्ट होने का कोई उपाय बताने की कृपा करें। भगवान महावीर ने कहा—“तुम कालसौकरीक कसाई से जो एक दिन में 500 भैंसे मारता है, भैंसों को एक दिन के लिए मारना बंद करवा दो तो तुम्हारे पाप कर्म नष्ट हो सकते हैं।” राजा श्रेणिक ने उस कसाई को बुलाया और कहा—“मेरे कहने से तुम एक दिन के लिए भैंसों की हिंसा बंद कर दो तो मैं तुम्हें बहुत धन दूंगा।” कसाई ने कहा—“धन लेकर मैं अपने नियम को नहीं तोड़ सकता।” राजा श्रेणिक बहुत नाराज हुआ और उसने उसे एक जेल में बंद करवा दिया।

दूसरे दिन राजा श्रेणिक भगवान महावीर के पास गये और कहा—“भगवन् मैंने उस कसाई को भैंसे मारने से रोक दिया।” यह सुनकर भगवान महावीर ने कहा—“महाराजा श्रेणिक, उस कसाई ने वैसे तो एक भी भैंसा नहीं मारा किन्तु भावना से उसने 500 भैंसे मार दिये और उसने 500 भैंसे मारने का पाप कर लिया।” राजा वापस महलों में आया और कसाई से पूछा—“तुमने भैंसे कैसे मारे ? कसाई ने उत्तर दिया—मैंने अपने शरीर का मैल उतार कर उसकी भैंसे की आकृति बनाकर नाखून को छूरी समझकर उसे काट दिया। इस तरह 500 बार करके 500 भैंसे मारने का कार्य कर लिया।

हम चाहे एक भी जीव के शरीर को नहीं छुएँ, वह चाहे हमसे हजारों किलोमीटर दूर सुरक्षित और सुखपूर्वक बैठा रहे किन्तु हम अपने घर पर बैठे हुए ही विचारों द्वारा, कल्पना द्वारा या भावना द्वारा किसी मिट्टी के ढेले को या गोबर के टुकड़े को या गूदे हुए आटे के टुकड़े को या किसी कपड़े को या कागज को या लकड़ी की गुड़िया बनाकर या किसी भी प्राणी को या वस्तु को जीवित प्राणी मानकर काट दें, मार दें, या जला दें तो यह भाव हिंसा कहलाती है। भाव हिंसा से सचमुच में जीव तो एक भी नहीं मरता किन्तु मारने का पाप लग जाता है। “मैं दस आदमियों को मारूंगा” ऐसा विचार भाव हिंसा है और इससे 10 आदमियों को मारने का पाप लग जाता है। ऐसे ही बड़े कामों की इच्छा करने वाले या बड़ी-बड़ी हिंसक योजनाएँ बनाने वाले भी चाहे कुछ न करें वे पाप के भागी तो बन ही जाते हैं। जो मनुष्य विचार करता है कि यदि मेरे पास एटम बम या अणु बम हो तो मैं शत्रु के नगरों को और शत्रु की सेना को मार दूंगा, ऐसा विचार करने वाला किसी को नहीं मारता किन्तु भावना के कारण वह भी दुर्गति में चला जाता है।

बाहुबलीजी और अहम् भाव

बाहुबलीजी ने दीक्षा ले ली किन्तु वे भगवान आदिनाथ के पास नहीं गये क्योंकि उनके छोटे भाइयों ने उनसे पहले दीक्षा ली थी और वहाँ जाने से बाहुबलीजी को अपने छोटे भाइयों को जो दीक्षा में उनसे बड़े थे, नमस्कार करना पड़ता। बाहुबलीजी इस प्रकार एक वर्ष तक वन में खड़े रहे। वे तपस्या करते रहे किन्तु अहंकार के कारण उनको केवलज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। एक दिन उनके कानों में एक गीत सुनाई दिया—

वीरा मोरा गजथकी उत्तरो

गज चढ़ाऊँ केवल ना होसी रे।

बांधव गज थकी उतरो ।

उन्होंने आवाज पहचान ली। यह आवाज उनकी साध्वी बहिनों ब्राह्मी तथा सुन्दरी की थी। उन्होंने विचार किया—“मैं तो जमीन पर खड़ा हूँ हाथी पर नहीं चढ़ा हुआ हूँ फिर मैं किस हाथी से नीचे उतरूँ।” फिर उनके समझ में आया कि मैं अहंकार रूपी हाथी पर चढ़ा हुआ हूँ। इसी अहंकार के कारण इतनी लम्बी और कठोर एक वर्ष की तपस्या होने पर भी केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई। उन्होंने विचार किया कि अब मैं अहंकार छोड़ूंगा और भगवान ऋषभदेव के पास जाकर सभी संतों को वंदना करूंगा। ज्योंही उन्होंने वंदना करने को जाने के लिए पैर उठाया त्योंही उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। अहंकार से केवलज्ञान नहीं हो सकता। केवलज्ञान विनय से प्राप्त होता है।

बच्चों की शिक्षा

प्राचीन काल में मदालसा नाम की एक महासती थी। उसने इस शर्त पर विवाह किया था कि मैं पुत्रों को जैसा चाहूंगी वैसा ही बनाऊंगी।

जब बच्चा सती मदालसा के गर्भ में रहता था तब वह संतों का प्रवचन सुनती, धार्मिक बातों का चिन्तन-मनन करती। धार्मिक भजन गाती। इसका सीधा प्रभाव गर्भ के बच्चे पर पड़ता। जब लड़का हो जाता तो वह दासी को नहीं सौंपती किन्तु स्वयं ही उनकी पूरी देख-भाल करती। उनको झूला झूलाते हुए वैराग्य भरी लोरियाँ सुनाती। वह कहती—

सिद्धोऽसि, ब्रह्मोऽसि, निरंजनोऽसि ।

संसार माया परिवार्जितोऽसि ।।

इन गीतों का छोटे बच्चे के मन पर ऐसा प्रभाव पड़ता कि वह बड़ा

होकर साधु बन जाता। इस प्रकार उसके लड़के साधु बन गए। जब सातवां लड़का गर्भ में आया तो राजा ने कहा—“महारानी छह बच्चे तो साधु हो गए इसे तो राजा बनाओ नहीं तो राज्य कौन सँभालेगा।” तब उसने इस बच्चे को गर्भ से ही राजनीति और वीरता की बातें सिखाई। अतः यह सातवां पुत्र पिता की तरह ही बड़ा प्रतापी, सुखी और प्रसिद्ध राजा हुआ।

अभिमन्यु भी जब वह माता के गर्भ में था तभी चक्रव्यूह भेदना सीख गया।

बच्चों की शिक्षा उनके बचपन से पहले ही शैशव काल के पहले ही और जन्म के पहले ही उनके माता-पिता की शिक्षा और सुसंस्कृति से दी जाती है।

पापी कौन धर्मी कौन

एक दिन धर्म की सभा में बहुत से आदमी बैठे थे। उस समय एक आदमी ने धर्म गुरु से पूछा—“गुरुदेव विलायत में रोबिन हुड नाम का एक डाकू हुआ था जो अमीरों को लूटता था तथा गरीबों को धन देता था। मैं भी ऊपर से साहूकार दिखाई देता हुआ व्यापार में अन्याय से, मिलावट से चोरी करके धनिकों को लूटकर गरीबों की मदद करता हूँ और आपकी धर्म सभा में भी दान देता हूँ। मुझे बताने की कृपा करें कि मुझे धर्म अधिक हुआ या पाप ?

गुरुदेव ने उत्तर दिया—“धर्म और पाप कम या अधिक होना तो भगवान ही बता सकते हैं क्योंकि यह बात कुछ तो मनुष्य की भावनाओं पर और कुछ सारी परिस्थितियों पर निर्भर करती है किन्तु आप यह बतायें कि एक मनुष्य मल-मूत्र के नाले में बार-बार हाथ डालता है और बार-बार उन्हें धोता है तो उसे आप अच्छा कहेंगे या बुरा। यदि धन कमाकर और उसे दान देने में अधिक धर्म होता तो लोग धन देने वाले से साधु को ज्यादा श्रेष्ठ क्यों समझते। दान देने वाले को प्रथम तो यह पता नहीं चलता कि दान लेने वाला सच्चा गरीब है या दिखावटी गरीब है। दूसरा यह भी पता नहीं चलता कि वह धन का उपयोग किस रूप में करेगा। यह तो साफ है कि लूटना तो पाप है और महापाप है। भावना शुद्ध है और क्रिया गलत है तो कायिक पाप तो होगा ही। मन, वचन और काया तीनों शुद्ध है तो धर्म होगा और अगर इन तीनों में से कुछ भी गलत है तो पाप तो लगेगा ही। अतः वकील, डॉक्टर, अध्यापक आदि कोई भी अगर हो सके तो बिना फीस लिए मदद करेगा तो उसे बहुत धर्म होगा।

तब एक दूसरा आदमी खड़ा हुआ और उसने कहा—गुरुदेव मैं शेख चिल्ली या जीर्ण सेठ की तरह हमेशा नवीन-नवीन योजनाएँ दिन में कई बार बनाता हूँ लेकिन मैं सादगी से ही रहता हूँ। क्या मुझे भी पाप लगेगा ? गुरुदेव ने उत्तर दिया—“तुम सादगी से रहो या न रहो किन्तु योजना बनाने के कारण तुम कालसौरिक कसाई की तरह या तन्दुल मत्स्य की तरह सातवीं नरक में पहुँचाने वाले भारी पाप कर्मों का बंधन कर लेते हो। किन्तु जीर्ण सेठ की तरह शुभ भावनाओं का संचय करने से मोक्ष मार्ग के पथिक भी बन सकते हो क्योंकि शुभ भावना से मोक्ष और अशुभ भावना से नरक मिलता है। पाप और पुण्य भावना पर निर्भर है।”

तब एक तीसरे आदमी ने कहा—“गुरुदेव मैंने सुना है कि पाप तो केवल भावनाओं से ही लगता है। मैं छत पर खड़ा था। ऊपर से ईंटें नीचे फेंक रहा था। एक ईंट किसी रास्ते में चलते हुए बच्चे के ऊपर गिरी और वह मर गया। बताइये क्या मुझे भी पाप लगेगा ?

गुरुदेव ने उत्तर दिया—“यह बताओ कि तुम रास्ते से जाओ और एक आदमी बंदूक चलाना सीख रहा हो, यदि उसकी गोली से तुम्हें चोट लग गयी तो तुम उसे पापी मानोगे या नहीं। सावधानी न रखने से, प्रमाद से, अयतना से पाप लगता है।

तब एक चौथे आदमी ने पूछा—“गुरुदेव मैं किसी का बुरा तो नहीं करता लेकिन जब किसी का बुरा होता है तो मुझे खुशी होती है।

गुरुदेव ने जवाब दिया यह दुर्भावना है, यह बहुत बड़ा पाप है। ऐसा आदमी नरकों में जाता है और सातवीं नरक तक जाता है। अच्छे काम को अच्छा समझना और उससे खुश होने वाला धर्मात्मा होता है और बुरे काम को अच्छा समझने वाला या उससे खुश होने वाला पापी होता है।

सारे धर्म का सार यही है कि मुनि गजसुकुमाल की तरह या अर्जुनमाली की तरह या मुनि दृढ़ प्रहारी की तरह किसी पर क्रोध मत करो और अपने शरीर के ऊपर आये हुए कष्टों को दुःख मत मानो और नवकार मंत्र या सिद्धों का ध्यान और सिद्धांत का चिंतन यानी ज्ञान का चिंतन करने से शुद्ध भावना आने से कर्म कटते हैं।

संसार की चार घाटियाँ

क्रोध
(1) (2)

परिवार मोह
(3) (4) (5) (6)

अहंकार
(7)

इच्छा
(8)

1. मुझे दुःख देने की मूल भौतिक शक्ति केवल मेरे ही अशुभ कर्मों में है। निमित्त शत्रु पर क्रोध क्यों किया जाय।

2. परिवार के किसी सदस्य के साथ मेरे पूर्व जन्म के वैर के कारण यदि मेरे अशुभ कर्म उससे मुझे दुःख दिलावें या जहर पिलावें तो भी उस निमित्त पर मुझे क्रोध नहीं करना चाहिए। जैसे कि मुनि उदाई ने, भक्त मीराबाई ने, कृष्णाकुमारी ने जहर पिलाने वालों पर भी क्रोध नहीं किया।

3. परिवार का कोई भी सदस्य मेरे अशुभ कर्मों को शुभ कर्मों में और दुःख को सुख में नहीं बदल सकता। परिवार की शक्ति सीमित है।

4. मुझे मेरे शुभ कर्मों से परिवार के द्वारा जो सुख मिलता है उसको अधिक बढ़ाने की शक्ति परिवार में नहीं है।

5. अन्तराय कर्म के उदय के समय मेरे अन्तराय कर्म को तोड़कर मुझे सुख देने की शक्ति परिवार में नहीं है।

6. मैं परिवार के अशुभ कर्मों को शुभ कर्मों में नहीं बदल सकता अतः मेरा परिवार के लिए चिंता, मोह करना व्यर्थ है। भौतिक सुख दुःख देने की भौतिक शक्ति केवल प्राणी के स्वयं के कर्मों में ही है। परिवार तो केवल निमित्त ही बनता है।

7. मनुष्य के शुभ कर्मोदय के समय कम बुद्धि वाले को भी सफलता मिल जाती है किन्तु अशुभ कर्मोदय के समय, विनाश काल के समय बड़े-बड़े बुद्धिमान मनुष्यों को स्वयं की बुद्धि भी उनका साथ नहीं देती है। बुद्धि का अहंकार करना भूल है। अपनी बुद्धि अहंकार छोड़कर विनयपूर्वक बड़ों से राय लेना ही बुद्धिमानी है।

8. प्रथम इच्छा शोधन और अन्त में इच्छा निरोध यही मोक्ष का मार्ग है।

अशुभ कर्म से है दुःख आया।
क्रोध न कर, कर कर्म सफाया।।
कर्म कुटुम्ब के बदल न सकता।
चिंता मोह मैं व्यर्थ ही करता।।
भौतिक शक्ति है, निज कर्मों में।
सुख देने की शुभ कर्मों में।।
दुःख देने की पाप कर्म में।
बुद्धि वैसी ही बन जाती।।
जैसी कर्मों की गति चाहती।।

सत्यवादी हरिश्चन्द्र

एक बार स्वर्ग लोक की अप्सराएँ पृथ्वी पर आकर मुनि विश्वामित्र के आश्रम में खेलने लगी, जिससे उनके आश्रम की वाटिका में फूलों के पेड़ और लताएँ क्षत-विक्षित हो गयी। जब मुनि विश्वामित्र वहाँ आए तो उन्हें बहुत क्रोध आया और उन्होंने अप्सराओं को तप बल से लताओं से बाँध दिया। इस पर अप्सराएँ चिल्लाने लगी—“हमें बचाओ, हमें बचाओ।” उसी समय संयोग से महाराज हरिश्चन्द्र का उधर आना हो गया। जब उन्होंने यह पुकार सुनी तो उन्होंने वहाँ आकर अपने सत्यबल की शक्ति से अप्सराओं को बंधन मुक्त कर दिया। तपस्वी में देवताओं से अधिक शक्ति होती है और तपस्वी से भी अधिक शक्ति सत्यवादी में होती है। सत्य महातप है, महाव्रत है, इससे मनुष्य को महाशक्ति प्राप्त होती है। सत्यवादी को देवता भी नमस्कार और प्यार करते हैं और उस प्राणी के प्रार्थना किए बिना भी उसकी सहायता करते हैं।

सच बोलूंगा, सच बोलूंगा।

निश्चय ही मैं सत्य बोलूंगा।।

सुख आवे या दुःख आवे मैं।

झूठ कभी नहीं बोलूंगा।।

दुर्भावना से बचिए

बड़े लोगों की बात अलग है किन्तु साधारण लोगों में अशुभ कर्म बंधन का एक बड़ा कारण है दुर्भावना का होना। दुर्भावना में भी दो मुख्य बातें हैं। प्रथम दूसरों के पतन पर या दूसरों के दुःखी होने पर हमारे मन में हल्की-सी खुशी का होना। दूसरी बात है दूसरों को दुःख पहुँचाने की भावना। इन दो बातों को मिटाने का एक ही उपाय है कि “सबका भला हो, सबका भला हो” हम इस भावना का प्रतिदिन काफी समय तक चार छः महीनों तक स्वाध्याय करें अर्थात् इसका जप चिंतन-मनन करें।

इस उपाय से प्राणी बहुत से अशुभ कर्म बंधन से बच सकेगा।

सबका भला हो, “सबका भला हो” इसके स्वाध्याय से दुर्भावना आनी बंद हो जाएगी।

बनना पड़ा हो। जैसे—भगवान् महावीर को संगमदेव ने उपसर्ग (कष्ट) दिए थे। तीर्थकर महावीर ने इसका बदला नहीं लिया तो संगमदेव को दंड देने के लिए इन्द्रदेव को निमित्त बनना पड़ा। इसी प्रकार जिससे आपको दुःख मिल रहा हो, उस व्यक्ति को शायद दूसरे के बदले में निमित्त बनना पड़ा हो। इसलिए दंड में निमित्त बनने वाले को शत्रु मानना भूल है।

निमित्त को उपकारी मानने से प्रथम तो निमित्त पर क्रोध नहीं आता, रौद्रध्यान नहीं बनता, बदला लेने की दुर्भावना नहीं बनती, वैर नहीं बंधता और अशुभ कर्म नहीं बंधते। दूसरे, उपकारी मानने से दुःख नहीं होता, आर्तध्यान नहीं बनता, नये अशुभ कर्म नहीं बंधते। तीसरे, समताभावी बनने में बहुत सहायता मिलती है, जिससे बहुत से अशुभ कर्म कट जाते हैं।

निमित्त द्वारा दुःख मिलने से बहुत से लोगों को अप्रत्यक्ष रूप से कभी-कभी लाभ भी होता है। जैसे—1. भीम को कौरवों द्वारा जहर पिलाकर बेहोशी की दशा में नदी में बहा दिया गया। भीम को खिलाया गया जहर उसको सर्पों के काटने से दूर हो गया और उसे वहाँ वल्गरी का रस पीने को मिला जिससे उसमें हजार हाथियों का बल आ गया। 2. प्रद्युम्नकुमार का उसके जन्म होते ही एक शत्रुदेव द्वारा हरण कर लिया गया। उसे पहाड़ों में एक पत्थर के नीचे दबाकर छोड़ दिया गया। किन्तु पुण्यशाली प्रद्युम्नकुमार पर एक विद्याधर की दृष्टि पड़ी। वह उन्हें अपने साथ ले गया और वहाँ पर प्रद्युम्नकुमार को अनेक विद्याओं की प्राप्ति हुई। राजा नल को जुए में राज्य हारने के बाद वन में भटकते हुए एक तक्षक द्वारा काट लिया गया जिससे उसके भाई कुबेर द्वारा उसके पकड़े जाने और मारे जाने का खतरा दूर हो गया। कुछ वर्षों के बाद शुभ कर्मों के उदय से उसे राज्य की प्राप्ति हो गई।

सारांश या स्वाध्याय सूत्र—कर्मों की गति बड़ी विचित्र होती है। कभी-कभी शत्रु द्वारा दिया गया दुःख भी मनुष्य की आत्मा का बहुत हित कर देता है। अतः निमित्त को शत्रु नहीं मानकर अपना मित्र समझना चाहिए।

क्रोध (शत्रु भावना)

1. बुरा अपने अशुभ कर्मों से होता है। निमित्त को शत्रु मानकर उस पर क्रोध करना भविष्य के लिए शत्रुता की परम्परा को चालू रखने के सिवाय और कुछ नहीं है। 2. यदि हमारे अशुभ कर्मों का उदय हो तो शत्रु या किसी प्राणी के निमित्त बने बिना भी हमारा बुरा हो सकता है।

जैसे—सड़क पर पैर फिसल कर हम गिर सकते हैं और हमारा सिर फट सकता है। 3. हमारा बुरा होने पर हमें उस दुःखानुभूति को दूर करने का प्रयास करना चाहिए, जो दुःखानुभूति शीर्षक में दिया गया है। 4. दुःख में निमित्त बनने वाले को भी अपना उपकारी, अपने कर्म-रोग की दवा करने वाला डॉक्टर मानकर 'उसका भला हो, उसका भला हो' ऐसी सद्भावना भानी चाहिए। इससे दुःख और क्रोध दोनों ही से बचा जा सकेगा। 5. प्रतिदिन नियत समय पर कुछ समय के लिए क्रोध छोड़ने का नियम बनायें। यदि किसी दिन यह नियम भंग हो जाए तो प्रायश्चित्त कर लेना चाहिए।

अहं भावना

1. अहंकार से मनुष्य में हठ, दूसरों के प्रति घृणा, द्वेष दुर्भावना, शत्रुता और क्रोध पैदा होता है। 2. अहंकारी मनुष्य अपनी प्रशंसा सुनकर दूसरों से ठगा जाता है। जैसे—कौआ लोमड़ी से ठगा गया था। 3. अपने को बड़ा दिखाने के लिए व्यर्थ के दिखावे में वह अपना धन व अपनी शक्ति और समय को व्यर्थ खर्च करता है और उसका पतन होता रहता है। 4. अपने गुणों को देखने से, अपनी बड़ाई सुनने से, आदर-सत्कार पाने से और दूसरों के अवगुण देखने से मनुष्य में अहंकार पैदा होता है। अच्छा काम करने वाले को अपनी प्रशंसा या अहंभाव की भूख नहीं रखनी चाहिए। 5. अपने अवगुण देखने से, दूसरों के गुणों को देखने से, दूसरों की बड़ाई या प्रशंसा करने से, दूसरों से सलाह लेते रहने से अहंकार समाप्त होता है। 6. अपनी सफलता का श्रेय दूसरों को, अपने से बड़े आदमियों को या अपने मित्रों को या अपने अधीन काम करने वालों को देने से अहंकार पैदा नहीं होता। 7. अहंकार से अशुभ कर्मों का बंध और आत्मा का पतन होता है, दुःख की प्राप्ति होती है और विनय से सुख, स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त होता है। 8. अच्छा काम या धर्म करते समय असावधानी से यदि अहंकार आ जाए तो उस अहंभाव के लिए तुरन्त ही पश्चात्ताप कर लेना चाहिए। जब तक पश्चात्ताप नहीं किया जाएगा, तब तक उस धर्म कार्य का अच्छा फल भी नहीं मिलेगा। जैसे—बाहुयलीजी को जब तक उनका अहंकार नहीं छूटा तब तक घोर तपस्या का फल मिलना भी रुका रहा। 9. कोई मनुष्य किसी दूसरे प्राणी का उसके अशुभ कर्मों के बिना बुरा नहीं कर सकता। अतः किसी कार्य का अहंकार करना भूल है। 10. मनुष्य अपने ही निर्वर्तित और बर्धन से कर्मों को काट नहीं सकता है, उन्हें भोगना ही पड़ता है। फिर

अहंकार करना भूल है। 11. मनुष्य जब बहुत वृद्ध हो जाता है और उसके हाथ पैर काम नहीं देते तब उसे अनुभव होता है कि अहंकार करना भूल है। 12. सारी शक्ति कर्मों के हाथ में है। अतः अपने शरीर का, धन का, परिवार का या बुद्धि का अहंकार करना भूल है। 13. अशुभ कर्मोदय के समय बुद्धि काम ही नहीं देती, किन्तु वह कर्मों के अनुसार उल्टा काम करा देती है। इसलिए अपनी बुद्धि का अहंकार करना बड़ी भूल है।

कपट (माया)

1. किसी भी काम में सफलता शुभ कर्मों से मिलती है। कपट करने वाले बहुत से आदमी अपने कामों में असफल रहते हैं। 2. यदि कपट से सुख मिलता तो प्रायः सभी लोग दुःख से बच जाते। 3. कपट अशुभ कर्म है। कपट के साथ किया हुआ अच्छा काम भी बुरा बन जाता है। 4. वह कपट का भेद खुल जाने के डर से हमेशा भयभीत और दुःखी रहता है। 5. कपट करने वाले का कोई भी विश्वास नहीं करता है। सभी लोगों से उसका सम्बन्ध टूट जाता है और उसका आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक पतन हो जाता है। 6. सत्य आचरण करने वाले की देवता भी सहायता करते हैं।

धन लोभ से बचिए

गृहस्थ को अपने और अपने परिवार के जीवन-निर्वाह के लिए धन तो कमाना ही पड़ता है। किन्तु यदि वह धन कमाते हुए भी अपनी विचारधारा को सही मार्ग पर चलाए और अपने विचारों में हर्ष-विषाद न होने दे तो वह धन के लोभ से होने वाले अशुभ कर्मों के बंध से और अशुभ कर्मों के बंध से मिलने वाले दुःख से बच सकता है। जैसे—एक सेठजी को उनके मुनीमजी ने कहा कि जो एक लाख रुपये का माल गोदाम में रखा गया था उसका भाव घट गया है और बहुत हानि हो गई है। यह सुनने पर भी सेठजी के चेहरे पर उदासी नहीं आई और उन्होंने कहा—“जैसा योग था, वैसा हो गया। चिंता करने की क्या जरूरत है?” दूसरे दिन ही बाहर भेजे हुए माल के बाबत मुनीमजी ने कहा कि इसमें दो लाख का लाभ हुआ है। यह सुनकर सेठजी के मन में कुछ भी हर्ष नहीं हुआ और उन्होंने मुनीमजी से कहा कि लाभ और हानि तो कर्मों का खेल है। इसमें हर्ष और विषाद करने की क्या जरूरत है? इस प्रकार की भावना वाले लोग ही अशुभ कर्मों के बंध और अशुभ कर्मों से मिलने वाले दुःख से बच सकते हैं।

हम दूसरों के जीवन या सुख या धन का हक छीन लें तो उस अशुभ कर्म और पाप के बदले में हमारे अशुभ कर्मों का बंध होता है और उससे हमें बहुत समय तक दुःख भोगना पड़ता है।

भौतिक शारीरिक सुख के पाने से, उसके लिए धन पाने से, पुराने सुखों को याद करने से, उनकी कल्पना करने से, उनकी बाबत विचार करने से, उनकी इच्छा करने से और शेख चिल्ली की तरह मैं ऐसा करूंगा, वैसा करूंगा इस प्रकार के मन के मोदक (लड्डू) खाने से चाहे काम कुछ भी न करें किन्तु केवल विचार करने से ही मन में खुशी होती है। यह सुखानुभूति है। कभी-कभी दूसरों का पतन होने से, दूसरों के संकट में फंसने से या दूसरों को दुःखों में डालने के विचार से सुखानुभूति होती है। इसमें अशुभ कर्मों का बंध होता है और प्रत्येक सुखानुभूति के लिए हमें दुःख उठाना पड़ता है।

शरीर-निर्वाह की दृष्टि से आवश्यक साधनों का सहारा लेना पड़ता है। परन्तु उसमें जितना अधिक विवेक-सावधानी रहेगी, उतने ही कम कर्मों का बंधन होगा।

1. अपने शरीर से, धन से और अपने मन के विचारों से मिलने वाले भौतिक-शारीरिक-इन्द्रिय सुख को सुखानुभूति कहते हैं। 2. प्रत्येक थोड़े से भौतिक सुख के बदले में बहुत काल तक दुःख भोगना पड़ता है। 3. सुख भोगों में डूबा रहने वाला मनुष्य ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की तरह सातवीं नरक में जाता है। 4. सुख-भोगों में नीरसता रखने वाले (रस नहीं लेने वाले) जम्बू स्वामी की तरह मोक्ष में जाते हैं। 5. ये सुख-भोग उन गोलियों के समान हैं जो ऊपर से चीनी की चाशनी लगने के कारण मीठी और स्वादिष्ट लगती हैं किन्तु जिनके अन्दर हलाहल (जहर) भरा है और वे खाने वाले का प्राणांत कर देती हैं। 6. ये सुन्दर और सुखद सवारियाँ हैं जो सवार को

नहीं संभलने से उसे नरक में ले जाती है। 7. सुख-भोगों के समय यह विचारना चाहिए कि “खेद है कि मेरे कर्म बंध रहे हैं, मेरे कर्म बंध रहे हैं।” इस विचार से सुख की आसक्ति कम हो जाएगी।

दुःखानुभूति

1. सुख-भोगों में बाधा पड़ने से या उनके लिए धन नहीं मिलने से या रोगों से घिर जाने पर या अप्रिय घटना घट जाने पर या उपसर्गों के आने पर मनुष्य को दुःखानुभूति होती है। इससे अशुभ कर्मों का बंध होता है जो दुःख का कारण बनता है। 2. अपने पति के मर जाने पर और इससे अपने सुख-भोगों में बाधा पड़ने पर चक्रवर्ती की पटरानी छः मास तक दुःख और विलाप करके छटे नरक में जाती है। 3. दुःखानुभूति से बचने वाले और दुःख को कर्मों की निर्जरा में सहायक समझकर समता रखने वाले समता से अपने कर्म काटकर मुनि गजसुकुमाल, मुनि उदाई की भांति मोक्ष में जाते हैं। 4. दुःख में दुःखी होने और रोने से जो नवीन अशुभ कर्म बंधते हैं, उनके बदले में उसे पुनः दुःख मिलता है। 5. दुःख के समय यह विचारधारा दुःख को कम करने में सहायक होगी—“यह दुःख, दुःख नहीं है। यह मेरे कर्मों का फल है। यह मेरे कर्मों की निर्जरा है। मुझे हिम्मत रखनी चाहिए, मुझे समता रखनी चाहिए। इससे मेरे कर्म कटेंगे। आज मेरा अहोभाग्य है कि मेरे कर्म कट रहे हैं और मैं मोक्ष के नजदीक पहुँच रहा हूँ।

इच्छा

जिन कामों के नहीं करने से अपना और दूसरों का आत्म-उत्थान रुक जाए, उसे कर्तव्य या आत्म-धर्म समझना चाहिए। जैसे—दान, तप या स्वाध्याय। इनका करना कर्तव्य है।

जिन कामों के नहीं करने से अपना और दूसरों का जीवन-निर्वाह रुक जाए, उसे आवश्यकता या अनिवार्य कार्य समझना चाहिए। जैसे—भूख में सादे भोजन के लिए मन का चलना, शीत-ताप और वर्षा से बचने के लिए आश्रय की इच्छा।

जिस वस्तु या काम के किए बिना जीवन-निर्वाह या आत्म-उत्थान में बाधा नहीं पहुँचे किन्तु जिससे भौतिक सुखानुभूति मिलती हो, उस वस्तु या काम के लिए मन का चलना इच्छा है। जैसे सादे भोजन के स्थान पर बढ़िया स्वादिष्ट पकवानों की इच्छा करना, साधारण आश्रय की जगह

अनुसार अच्छे या बुरे फल देने की व्यवस्था उनके कर्मानुसार होती है। क्योंकि ये फल केवल भौतिक शरीर के माध्यम से ही भोगे जा सकते हैं, इसलिए उन-उन प्राणियों को फल भोगने के लिए देव या मनुष्य या नारकी पशु या पक्षी की, जैसी शरीर की आवश्यकता होती है, वैसा ही शरीर उन्हें कर्मानुसार मिलता है और किस-किस प्राणी को उस-उस शरीर में कितने-कितने समय तक कब से कब तक रहना है, यह भी उनके कर्मों पर निर्भर है। इसके साथ-साथ किस-किस प्राणी को यानी उपादान को, किस-किस प्राणी से अर्थात् निमित्त से कैसे-कैसे और कितना-कितना सुख-दुःख मिलना है, इस व्यवस्था में भी उनके कर्मों की प्रधानता होती है। और उस फल पाने वाले (उपादान) को फल देने वाले (निमित्त) का उतने समय तक एक परिवार में जन्म द्वारा, विवाह द्वारा रहना या स्वामी-सेवक के रूप में रहना या एक-दूसरे के शत्रु के रूप में एक ही परिवार में रहना या एक परिवार के रूप में रहना भी उनके कर्मों पर आधारित है अर्थात् परिवारों की रचना प्राणियों के कर्मानुसार होती है। दो प्राणियों का संयोग तथा वियोग भी कर्मानुसार होता है। इस प्रकार परिवार की रचना का आधार भी उपादानों या निमित्तों का संयोग ही है।

सारांश—जब तक सब कर्मों का क्षय नहीं होता है तब तक सभी मनुष्यों, पशुओं और पक्षियों को अपनी आयु समाप्त होने पर उनके कर्मों का फल भोगने के लिए कर्मों के आदेशों के अनुसार पुराने शरीर और परिवार को छोड़कर नये शरीर और दूसरे परिवार में जन्म लेना पड़ता है। किसी भी मनुष्य को उसके शुभ कर्मों के बिना उसके परिवार वाले उसके नाथ (रक्षक) नहीं बन सकते और हमेशा उसके साथ नहीं रह सकते। इसलिए परिवार के बाबत कहा जाता है—“नाथ नहीं है, साथ नहीं है।”

परिवार मोह

1. कोई भी प्राणी दूसरे प्राणी को उसके अशुभ कर्मों के फल से, दुःख से, कष्ट से, हानि से और मौत से प्रयास करने पर भी बचा नहीं सकता।
2. पिता-पुत्र या पति-पत्नी एक-दूसरे का भला उनके शुभ कर्मोदय के बिना प्रयास करके भी नहीं कर सकते।
3. शुभ कर्मोदय के समय किसी भी प्राणी का दूसरे शत्रु के द्वारा बुरा किए जाने पर भी उसका बुरा न होकर भला ही होता है।
4. किसी को सुख देना या उसका भला करना परिवार की

शक्ति में नहीं है। केवल कर्माधीन है। 5. यादवों के अशुभ कर्मोदय के समय में श्रीकृष्ण ने उनको और अपने माता-पिता को भी जलने से बचाने का पुरुषार्थ किया, किन्तु वे अपने अशुभ कर्मों के कारण बचाये न जा सके। 6. मुनि सर्वानुभूति और मुनि सुनक्षत्र की आयु-समाप्ति का प्रसंग ज्ञान के आधार जानकर तीर्थकर महावीर ने उनको बचाने का विचार या प्रयास ही नहीं किया। 7. जब तक हम गृहस्थी में परिवार के साथ रहते हैं तब तक हमें 'यह मेरा भाई है, यह मेरा भतीजा है' ऐसे मोह में नहीं पड़कर उनको 'यह आत्मा है, केवल आत्मा ही है' ऐसा मानकर उनकी सम्यक् सेवा करनी चाहिए। 8. परिवार-मोह छोड़ने वाली मरुदेवी माता मोक्ष गई।

(केवलज्ञान प्राप्ति की साधना)

1. शरीर अलग है, मैं (आत्मा) अलग हूँ। शरीर नाशवान है, शरीर मेरा नहीं है। 2. मरना (विनाश) इस शरीर का स्वभाव है। यह अनिवार्य नियम है। 3. यह शरीर कर्मों की देन है। मनुष्य को उसके कर्मों का फल शरीर के माध्यम से मिलता है। 4. प्राणी को उसके कर्मों के अनुसार मनुष्य, पशु या पक्षी का शरीर मिलता है। 5. यदि समझदार मनुष्य कार्य करते हुए जीवों की यतना रखता है और शरीर से मोह नहीं करते हुए इसे दूसरों के कल्याण-कार्यों में लगाता है तो वह मोक्ष का अधिकारी बनता है।

प्रतिदिन का स्वाध्याय

1. भला हो, भला हो, सबका भला हो, बुरा किसी का कभी नहीं हो।
2. इस संसार में मेरे अशुभ कर्मों के सिवाय कोई मेरा शत्रु नहीं है। क्रोध का आना दिमाग में कुछ खराबी होने की निशानी है। 3. मैंने जो अच्छा काम किया है, उससे समाज का कर्ज चुकाया है। अभी और भी कर्ज चुकाना बाकी है। मेरे अन्दर अहंकार का आना मेरे समझ की कमी है।
4. झूठ, कपट से धन आता नहीं, आता है तो ठहरता नहीं। ठहरता है तो वरबाद करके जाता है। और सत्याचरन वाले की देवता मदद करते हैं।
5. धन का आना और चला जाना दोनों ही कर्मों का खेल है। लोभ से अशुभ कर्मों का बंध होता है। यह भविष्य में दुःखों को निमंत्रण देना है। 6. प्रत्येक भौतिक सुख के बदले में दुःख तो भोगना ही पड़ता है। 7. दुःख को दुःख मानने से और रोने से होने वाले आर्तध्यान के बदले में नया दुःख फिर भोगना पड़ता है। 8. भौतिक सुख भोगों की केवल इच्छा से ही कुछ भी किए बिना भी अशुभ कर्म बंधते हैं और इच्छा निरोध (रोकने) से कर्म कटते हैं। 9. परिवार में कोई किसी का नाथ नहीं है और कोई किसी का साथी भी नहीं है। 10. यह शरीर अलग है और मैं अलग हूँ। यह शरीर मेरा नहीं है। यह परिवार भी मेरा नहीं है और यह धन भी मेरा नहीं है। 11. तन तजना है सिद्ध बनना है। अर्थात् यह शरीर छोड़कर सिद्ध बनना है। 12. प्रतिदिन बार-बार विचारिये कि कहीं क्रोध, अहंकार, कपट, लोभ की भावना और अशुभ इच्छाओं का शिकार तो मैं नहीं बना हूँ। यदि ऐसा हुआ हो तो उसका पश्चात्ताप करना जरूरी है। 13. सत्य बोलने वाले की देवता प्रार्थना किये बिना भी मदद करते हैं। दान देने से कर्मों की रेखा भी बदल सकती है।



धर्म विचार सार

कषाय मुक्ति : छठा भाग

समता के नौ सूत्र-

1. क्रोध छोड़ने के लिए दिन में आधे घंटे तक नियत समय पर क्रोध नहीं करने का नियम बनाया जाय। इसका सावधानी से पालन करने से क्रोध अवश्य ही छूट जाएगा।

क्रोध निमित्त पर व्यर्थ ही आता ।।

હટ છોડો અરુ ઝૂક હી જાઓ ।।

4. પાની પીઓ ક્રોધ બૂઝાઓ ।

गुरु गुण गाओ शीश-झुकाओ ।।

2. अहंकार से बचने के लिए नीचे लिखे विचारों का स्वाध्याय किया जावे-

अहम् भाव मन में क्यों आया ।।

2. अपने गुरुजनों से और बड़ों से सलाह लेने से, अपने भोजन में, वस्त्रों में, बातचीत में, विचारों में और जीवन के हर एक काम में सादगी रखने से, दूसरों की सेवा करने से, सेवा के प्रत्येक काम को कर्ज चुकाने का काम मानने से, अपनी सफलता का और अच्छे कामों का श्रेय (बड़ाई) अपने गुरुजनों और साथियों को देने से, अपनी बड़ाई नहीं सुनने से और जहाँ अपनी प्रशंसा हो रही हो वहाँ से उठकर थोड़ी दूर पर बैठ जाने से अहं भावना से बचा जा सकता है।

कौरव परिवार कभी दुःख नहीं पाते। कपट से धन आता नहीं, यदि आता है तो ठहरता नहीं और ठहरता है तो बरबाद करके जाता है।

4. धन का लोभ—परिवार के और अपने जीवन निर्वाह के लिए धन कमाना तो गृहस्थ का धर्म है किन्तु धन कमाना ही अपना लक्ष्य बनाना मोक्ष मार्ग छोड़कर संसार के मार्ग पर चलना है। धन का आना और धन का जाना कर्मों का खेल है।

5. परिवार है साथी नहीं मेरा।

परिवार है साथी कर्मों का।।

परिवार वाले हमारे अशुभ कर्मों को शुभ कर्मों में नहीं बदल सकते।

6. मनुष्य के शरीर की रक्षा उसके शुभ कर्मों से ही होती है। इसलिए मनुष्य को अपने शरीर की विशेष चिंता नहीं करके अपना समय धर्म-ध्यान में लगाना चाहिए।

7. दुःख के समय रोने से, आर्तध्यान करने से अशुभ कर्मों का बंध होता है जिससे दुःख मिलता है। समता रखने से अशुभ कर्म नष्ट होते हैं।

8. भौतिक सुख भोग—भौतिक सुखों में और मनोरंजन में अशुभ विचार और अशुभ काम करने से, उनमें रस लेने से अशुभ कर्म बंधते हैं और दुःख मिलता है।

9. आत्म-भावना—मैं भीतर हूँ, मैं भीतर हूँ।

सिद्ध बनूंगा, सिद्ध बनूंगा।

ऊपर लिखे हुए समता के नौ सूत्रों के संबंध में इस प्रकार चिंतन-मनन करना चाहिए—

10. क्रोध के संबंध में चिंतन-मनन—क्रोध अहंकार का उग्ररूप है। अहंकार से होने वाली सभी बुराइयाँ क्रोध में हैं। अहंकार छोड़ने से क्रोध छूट जाता है। क्रोध के समय मनुष्य प्रायः पागल-सा बन जाता है। वह चीजों की तोड़-फोड़ करता है। मनुष्यों से मारपीट करता है। दूसरों की तथा कभी-कभी अपनी भी हत्या कर लेता है। क्रोधी मनुष्य जीवन भर पछताता रहता है। क्रोधी मनुष्य अपने शत्रु के पीछे पड़ जाता है। उसके अपराध खोजता रहता है। अपराधों के लिए प्रमाण (सबूत) ढूंढता है और उससे प्रतिशोध (बदला) लेता है। क्रोध आने का कारण है मनुष्य की इच्छापूर्ति में बाधा पड़ना। जैसे—प्रशंसा, धन प्राप्ति, भौतिक सुख प्राप्ति, परिवार से सुख प्राप्ति और उसके दुःख से भागने में बाधा पड़ना।

और कौरव वंश का विनाश करवाया। पृथ्वीराज के अशुभ कर्मों ने उसको अहंकारी बनवाया, उसे असावधान बनवाया, मोहम्मद गोरी को जेल में कैद करवाया, पृथ्वीराज को अंधा बनवाया और उसकी दुर्दशा करवायी। अशुभ कर्म अपनी पहली चोट मनुष्य की बुद्धि पर ही लगाते हैं और बुद्धि विपरीत बनाकर उस मनुष्य का विनाश कराते हैं। मनुष्य के शरीर को रोग और बुढ़ापा बेकार बना देते हैं। मनुष्य के धन को धूर्त लोग और मनुष्य का दुर्भाग्य खा जाता है। अशुभ कर्मोदय के समय परिवार की शक्ति को परिवार की फूट खा जाती है। उसकी बुद्धि को उसके अशुभ कर्म विपरीत और विनाशकारी बना देते हैं। इस प्रकार मनुष्य की सभी शक्तियाँ बेकार बन जाती है। अतः अहंकार करना भयंकर भूल है।

12. माया (कपट) के संबंध में चिंतन—साधारण मनुष्य से देवता में और देवताओं से तपस्वियों में और तपस्वियों से भी अधिक शक्ति सत्यवादी में होती है, जैसा विश्वामित्र और हरिश्चन्द्र की कथा से प्रमाणित होता है।

13. धन का लोभ—जो धन जब, जितना और जिस प्रकार से कर्मों के अनुसार आना है वे तो साधारण पुरुषार्थ से और बिना इच्छा के और लोभ की भावना के बिना भी आ ही जावेगा। समझदार मनुष्य धन का लोभ नहीं करता। वह इच्छा छोड़कर 'इच्छा निरोध तप' से अपने अशुभ कर्मों को नष्ट करता है। साधारण स्थिति में कभी-कभी मनुष्य अशुभ काम और पाप कर बैठता है जिससे साधारणतया आता हुआ धन भी बंद हो जाता है। कभी-कभी शुभ कर्मों से दान देने से और पुण्य करने से तुरन्त ही अधिक धन आ सकता है। जैसे महापुरुष को दान देने से कभी-कभी धन की वर्षा होने लगती है या धन आने लगता है। इसलिए मनुष्य को जीवन में हमेशा शुभ व्यवहार का ही पालन करना चाहिए।

14. परिवार के संबंध में चिंतन—क्या आप मोक्ष पाना नहीं चाहते ? परमात्म पद पाना नहीं चाहते ? यदि चाहते हैं तो यह स्पष्ट है कि आपकी अन्तरात्मा यह मान चुकी है कि परिवार आपका नहीं है। आप इसे मोक्ष पाने के लिए छोड़ने को तैयार हैं। मरते समय परिवार को छोड़ना ही पड़ता है। जब शरीर ही छोड़ना पड़ता है तो परिवार अपना होगा ही कहाँ से ? आत्म-भावना भाने वाला यही स्वाध्याय करता है कि मुझ आत्मा के सिवाय और कुछ भी मेरा नहीं होता। यह शरीर मेरा नहीं है, यह परिवार मेरा नहीं

है, यह धन, घर आदि मेरे नहीं है। संसार में सब प्राणियों में केवल मुख्यतया एक ही संबंध होता है—निमित्त और उपादान कारण। एक प्राणी दूसरे प्राणी को सुख या दुःख, अन्न या धन, ज्ञान या अज्ञान देने में निमित्त कारण बन सकता है और दूसरा प्राणी उन्हें पाकर उपादान। एक दाता बनता है और दूसरा पाने वाला पात्र। संसार में सभी प्राणियों में केवल निमित्त और उपादान बनने का ही संबंध होता है। परिवार के जिन प्राणियों में परस्पर ऐसा बनने का संयोग, कर्मों की प्रेरणा से नहीं होता, तो उन प्राणियों का पारिवारिक संबंध भी टूट जाता है। कुंती ने अपने पुत्र कर्ण को जन्मते ही छोड़ दिया था। करकण्डु, कबीर, शकुन्तला, नूरजहां आदि को जन्मते ही माता-पिता से अलग होना पड़ा। इस दृष्टि से माता-पिता का संबंध बनने का जीवन में इतना महत्त्व नहीं है जितना महत्त्व निमित्त उपादान संबंध होने का होता है।

अतः परिवार यदि कदाचित् अपना शत्रु या मित्र बन जाता है तो भी उसे शत्रु या मित्र नहीं समझना चाहिए क्योंकि वह तो कर्मों की प्रेरणा से ही शत्रु या मित्र बनता है।

परिवार है साथी नहीं मेरा ।

परिवार है साथी कर्मों का ।।

15. शरीर भावना—शरीर की रक्षा हमारे कर्मण शरीर जो हमेशा हमारी आत्मा के साथ ही चिपका हुआ रहता है के द्वारा ही होती है। आदिनाथ भगवान के बारह महीने तक निराहार रहने के समय, बाहुबलीजी के बारह महीने में तपस्या में रहने के समय, भगवान महावीर के 5 महीने 27 दिन तक निराहार रहने के समय और मृगालोढ़ा के हाथ पैर नहीं होते हुए भी उसके शरीर की रक्षा उनके कर्मों के द्वारा ही हुई। पशुओं की, पक्षियों की, गर्भ के भीतर के जीवों की और अंडों के भीतर जीव की रक्षा भी उनके कर्मों द्वारा और आयु द्वारा होती है। अतः समझदार मनुष्य अपने शरीर के लिए विशेष चिन्ता नहीं करता और अन्याय, अनीति और अशुभ उपोषों और पाप कर्मों का सहारा नहीं लेता। वह साधारणतया अपना जीवन निर्वाह करता हुआ अपने शरीर से अपना अधिक समय परमात्मा के भजन और धर्म ध्यान में ही लगाता है।

16. दुःख भावना के संबंध में चिंतन—जो दुःख जब, जितना, जिस

प्रकार और जिस निमित्त से आना है वह या तो तप से नष्ट होता है या समताभाव पूर्वक भोगने से ही नष्ट होता है। समताभाव पूर्वक दुःख भोगने से मोक्ष मिलता है। जो सेवा जब, जितनी, जिसकी, जिस प्रकार निकाचित कर्मों की गति के अनुसार करने का योग है वह तो चन्दनबाला की तरह केरनी ही पड़ती है। दुःख के समय कषाय से बचने और विचारों में और आचरण में समता रखने के लिए इस प्रकार स्वाध्याय और चिंतन-मनन किया जा सकता है—

दुःख के समय दुःख को दुःख मानना, रोना और आर्तध्यान करना अशुभ क्रिया है। इससे अशुभ कर्म बंध होता है फिर उन अशुभ कर्मों के उदय होने पर दुबारा दुःख मिलता है। इस दुबारा दुःख भोगते समय रोने से और आर्तध्यान करने से फिर नये सिरे से अशुभ कर्मों का बंध होता है। इस प्रकार दुःख और आर्तध्यान करते रहने से दुःख के आने का अंत होता ही नहीं। अधिक रोने वाला और आर्तध्यान करने वाला नरक में जा सकता है। पति के वियोग में छः माह तक मोह वश आर्तध्यान करने वाली चक्रवर्ती की पटरानी छटे नरक में चली जाती है।

17. सुख भावना के संबंध में चिंतन-मनन—भौतिक सुख को सुख मानने से, उसमें आसक्त होने से और अशुभ कार्य करने से अशुभ कर्मों का बंध होता है और थोड़े सुख के बदले में बहुत समय तक दुःख मिलता है। जैन ग्रन्थों में यह भी बताया गया है कि भौतिक सुखों में लीन रहने वाला ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती सातवें नरक में चला गया। यह बात भी विशेष ध्यान देने की है कि सुख भोगना दुःख के आने का कारण नहीं होता किन्तु सुख भोगते समय दुःख प्राप्ति के अशुभ कार्य करने से और अशुभ विचार करने से दुःख का कारण बनता है। यदि सुख भोगते हुए भी शुभ कार्य और विवेक रखा जाय तो दुःख का आगमन नहीं हो सकता है। दुःख का आना तभी बंद होगा जबकि दुःख और सुख दोनों में समता रखी जावे। सुख में रस नहीं लेने वाला, नहीं हँसने वाला जम्बू स्वामी की तरह मोक्ष में जाता है।

18. अशुभ कर्मों का बंध कराने वाले नीचे लिखे हुए भौतिक सुखों के स्रोत में रस नहीं लेकर मनुष्य को कर्म बंध से बचना चाहिए। वे स्रोत ये हैं—

1. आँखों से टी.वी., सिनेमा, नाटक, नृत्य, मेले, उत्सव, दुर्भाविना से

दूसरों की यथायोग्य सम्यक् सेवा करना मनुष्य का धर्म है किन्तु दूसरों से अपनी अनावश्यक सेवा कराना पाप है।

दूसरों के प्रति सद्भावना, दुःखी को सांत्वना देना, भटकते हुए प्राणी को सही मार्ग बताना, दूसरों की आत्म-शुद्धि में और जीवन निर्वाह में सहयोग देना तथा अपने सामने आये हुए कार्यों को अपनी मर्यादा का ध्यान रखते हुए यथाशक्ति, यथा संभव पूर्ण करना आदि सेवा कार्य है।

22. कर्मों की प्रधानता—हमारे इस जीवन के पहले वाले जीवन की समाप्ति के समय उदय में आने वाले कर्मों ने ही हमारा वर्तमान शरीर, परिवार, जीवन साथी, वर्तमान परिस्थिति और वर्तमान उद्योग धंधा अर्थात् पेशा दिया है। हमारा कर्मण शरीर ही हमारी रक्षा करता है। मृत्यु को बूलाता है, वही कहीं पर उपादान व कहीं पर निमित्त बनाता है, वही सुख और दुःख को खींचकर हमारे पास लाता है और वही हमारा संरक्षक है, वही हमारे प्रायः सभी भौतिक कार्यों में प्रधान रहता है, उसके विधान को बदलना कठिन है। अतः चिन्ता और राग-द्वेष छोड़कर संतोष और समता रखकर, शुभ और शुद्ध पुरुषार्थ में लगा रहना ही मानव धर्म है।

23. ज्ञानवार्ता—(क) जब कर्मों के प्रभाव से होने वाली पुद्गल स्पर्शना अर्थात् होनहार रुक नहीं सकते तो क्रोध करने से क्या लाभ ? (ख) जब मनुष्य बड़ा नहीं किन्तु समय मनुष्य से अधिक बलवान है तो अहंकार करने से क्या लाभ ? (ग) जब कर्मण शरीर ही इस औदारिक शरीर का संरक्षक है तो यह औदारिक शरीर मेरा नहीं हो सकता। (घ) जब प्रत्येक जीव का संरक्षक ही अलग-अलग है तो उनका एक परिवार में होने का कोई अर्थ ही नहीं रहता। इन भावनाओं को लाख-लाख बार जपने से जीवन में परिवर्तन अवश्य ही आता है।

24. मोक्ष प्राप्ति में कुछ बाधाएँ—

1. मोक्ष प्राप्ति में प्रथम बाधक विकार है—क्रोध। इससे बचने के लिए इस प्रकार स्वाध्याय कीजिए—“क्रोधी कौशिक, चण्डकौशिक सर्प बना और समताधारी मुनि गजसुकुमाल सिद्ध बने।” बहुत दिनों तक ऐसा स्वाध्याय करने से क्रोध अवश्य ही कम होगा। क्रोध के समय मौन रहना और वहाँ से उठकर दूर चले जाना आवश्यक है।

2. दूसरी बाधा है—मान (अहम् भाव)। इसके लिए चिंतन और

‘णमो सिद्धाणं’

दोष मत दो निमित्त को

कषाय मुक्ति : सातवां भाग

(सिद्ध पद प्राप्ति की साधना)

यह स्वाध्याय जीवन भर प्रतिदिन कई बार करना चाहिए। सामायिक में या किसी भी खाली समय में दुकान में, मैदान में, मकान में, किसी भी जगह, दिन में या रात में, किसी भी समय विस्तर पर लेटे हुए किसी भी दशा में, बिना स्नान किए भी किया जा सकता है। हजारों लाखों बार स्वाध्याय करने से सिद्ध पद की प्राप्ति होती है।

दोष मत दो निमित्त को सप्त-सूत्री-स्वाध्याय

(क) दोष मत दो, दोष मत दो, दोष मत दो निमित्त को।

(ख) भला हो, भला हो, सबका भला हो।

(ग) नमस्कार है सब सिद्धों को, नमस्कार है सब संतों को।

(घ) शरीर अलग है, मैं अलग हूँ, शरीर नाशवान है।

(ङ) परिवार निमित्त ही बनता है।

(च) धन कर्माधीन है।

(छ) मैं सिद्ध बनूंगा।

प्रथम भावना—अद्वेष भावना अक्रोध भावना

इस भावना का प्रतिदिन अधिक से अधिक स्वाध्याय करने से यह भावना मनुष्य के अवचेतन मन में, रोम-रोम में अपना स्थान बना लेगी और संस्कार रूप में अनंतकाल तक साथ रहेगी।

इनमें प्रथम भावना के हजारों या लाखों बार स्वाध्याय करने से, इसके अर्थ का चिंतन करने से, इस भावना को जीवन में उतारने वाले मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदायी, मुनि अर्जुनमाली, मुनि दृढ़ प्रहारी, मुनि ज्ञंदक जिनकी जीवित अवस्था में चमड़ी उतारी गई थी और पाँच सौ

दूसरी भावना—परहित भावना

“भला हो, भला हो, सबका भला हो” इस भावना के स्वाध्याय से द्वेष, दुर्भावना, क्रोध, प्रतिशोध अर्थात् बदला लेने की भावना धीरे-धीरे दूर हो जाती है और मैत्री, अनुकम्पा, सम्यक् सेवा, समता आदि की भावना आने लगती है।

एक लेखक ने कहा है कि दूसरों का भला करने वाला और भला चाहने वाला भी तीर्थकर बन सकता है। क्षण भर के अपध्यान से तन्दुल मत्स्य सातवीं नरक जाता है तो दूसरों का भला चाहने वाला जीव मोक्ष क्यों नहीं पहुँच सकता ? हमारे इस सूत्र के स्वाध्याय से चाहे दूसरों का भला नहीं हो तो भी हमारी शुभ भावना के कारण हमारा भला तो अवश्य होगा। जिससे हमें बाधा पहुँचती है उसका नाम लेकर बार-बार कहना चाहिए कि श्री.....का भला हो, भला हो, भला हो। हमारी इन भाव तरंगों से वह हमारा हित करने वाला मित्र भी बन सकता है।

तीसरी भावना—नमस्कार या विनय भावना

घर बैठे हुए भी इस भावना को भाते समय कल्पना में दोनों हाथ जोड़कर संतों को या सिद्धों को कल्पना में सिर झुकाकर और उनके चरण छूकर भाव-वंदना करनी चाहिए और मन में यह कहना चाहिए—“नमस्कार है सब सिद्धों को, नमस्कार है सब संतों को।” इस भावना से पाप नष्ट होते हैं। इससे अहंकार और क्रोध भी दूर होते हैं। इससे पुण्य, विनय, केवलज्ञान तक की प्राप्ति होती है। बाहुबलीजी को अहंकार पूर्वक बारह महीनों तक कठोर तप करने से भी जो केवलज्ञान अविनय के कारण प्राप्त नहीं हुआ था, वह केवलज्ञान उनके अहंकार छोड़ते ही और विनय पूर्वक छोटे संतों को वंदना करने जाने के लिए एक पैर उठाते ही प्राप्त हो गया। विनय से केवलज्ञान की प्राप्ति भी होती है। विनय बारह महीने के लगातार उपवास से भी बढ़कर है।

विनय के संबंध में एक कविता भी है—

मैत्री भाव जीवों पर रखते।

मानवता का आदर करते।।

नमस्कार संतों को करते।

धार्मिकता के अहं से बचते ।।

यदि हम सिद्धों को या संतों को घर बैठे हुए भी बीस बार भाव-वंदना करें तो बीस बार ही पाप का क्षय होगा और पुण्य का लाभ होगा और विनय भावना मजबूत बनेगी। यदि अहंभाव आ जाये तो उसके लिए पश्चात्ताप करके आत्मा को शुद्ध करना चाहिए।

“शरीर अलग है। मैं अलग हूँ। शरीर नाशवान है। शरीर मेरा नहीं है।” मैं आत्मा हूँ। मैं देह भिन्न हूँ, मैं अमूर्त हूँ, मैं चेतन हूँ, मैं अवद्य हूँ, मैं अदाह्य हूँ, अजर-अमर हूँ, शाश्वत हूँ, ज्ञान रूप हूँ, आनन्दघन हूँ, जीवन हूँ, निराकार हूँ, निर्विकार हूँ, विमलज्योति हूँ, आत्मा हूँ। यह शरीर भावना है। यह देहात्म भेद ज्ञान है, यही आत्म भावना है। इसको भाते रहने से शिवभूति मुनि को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। शुरु-शुरु में यह भावना अटपटी, विचित्र और अविश्वसनीय लगती है। किन्तु आठ-दस महीनों तक इसे भाते रहने से इसमें पूर्ण विश्वास जम जाता है।

मुक्तात्माओं को छोड़कर संसार के सभी प्राणियों में (देवता, मनुष्य, तिर्यच आदि में) उपादान निमित्त-संबंध के कारण ही पिता-पुत्र, स्वामी-सेवक, मित्र-शत्रु आदि के संबंध बनते हैं।

सिद्धों का जन्म-मरण नहीं होता, उनके शरीर नहीं होता और उनके उपादान-निमित्त संबंध भी नहीं बनते। वे सब अलग-अलग होते हैं। इसी प्रकार सभी प्राणियों की आत्मा मूल रूप में अलग-अलग होती है। किसी

का किसी के साथ संबंध नहीं होता। जब तक स्थूल शरीर होता है तभी तक उपादान निमित्त संबंध बनते और टूटते रहते हैं।

उपादान-निमित्त संबंध सम्यक् द्रव्य सेवा, भाव सेवा, शुद्ध भावनाओं, पश्चात्ताप, तप और समता से समाप्त हो जाता है।

मोह पर विजय पाने के लिए 'परिवार मेरा नहीं है।' इस भावना का हजारों बार स्वाध्याय करने से भी मोह टूट जाता है। कभी-कभी किसी भावनात्मक चोट लगने से या किसी विशेष घटना से भी मोह टूट जाता है। जिस प्रकार कि मरुदेवी माता, भरत चक्रवर्ती, बाहुबलीजी, नमिराजर्षि आदि का मोह टूट गया था।

परिवार के सभी सदस्य मेरे लिए केवल निमित्त ही बनते हैं। वे अपने परिश्रम से मेरे कर्मों को नहीं बदल सकते, मुझे शरण नहीं दे सकते, मेरे संरक्षक नहीं बन सकते, क्योंकि मेरे शरीर का संरक्षक तो मेरा कर्मण शरीर ही बनता है। वे तो केवल अस्थायी निमित्त ही बनते हैं। उन पर क्रोध करना, मेरे लिए ठीक नहीं है।

छठी भावना—धन का लोभ

“धन का आना और धन का जाना मेरे हाथ में नहीं है, यह मेरे कर्मों के अधीन है।” शुभ कर्मोदय के बिना केवल भाग-दौड़ करने और “हाय धन, हाय धन” करने या रोने से धन नहीं आता है। दान-पुण्य, धर्म करने से इच्छा और लोभ के बिना भी साधारण पुरुषार्थ से भी धन की वर्षा होने लगती है।

सातवीं अन्तिम भावना—संकल्प

“मैं आत्मा हूँ, मैं शरीर के भीतर हूँ, मैं सिद्ध बनूंगा। मुझ आत्मा के अमूर्त आत्म-प्रदेश सिद्ध लोक में, सिद्ध दशा में, अटल-अवगाहना प्राप्त करेंगे। मैं आनन्दधन और अभय बनूंगा। इस भावना का स्वाध्याय और कल्पना दोनों करनी चाहिए। कल्पना इस प्रकार की जाती है—“मुझ आत्मा के अमूर्त आत्म-प्रदेश सिद्ध लोक में, सिद्ध दशा में, अटल-अवगाहना प्राप्त कर चुके हैं और मैं सिद्ध बन गया हूँ।” इस साधना से मनुष्य के मन से सांसारिक बातों और कामों के चित्र मिट जाते हैं। उसका भौतिक जीवन आध्यात्मिक जीवन बन जाता है। यह सिद्ध पद प्राप्ति की साधना है।

‘णमो सिद्धाणं’

सिद्ध-पद प्राप्ति की साधना

कषाय मुक्ति—आठवां भाग

“सिद्ध पद पाना ही जीवन का लक्ष्य है।”

—आचार्य श्री नानेश

1. सिद्ध-पद प्राप्ति की साधना—

स्वाध्याय का पाठ—“मैं भीतर हूँ, मैं सिद्ध बनूंगा।”

चिंतन-ममन-समता विभूति आचार्यश्री नानालालजी म. सा. ने “मैं सिद्ध बनूंगा” इस भावना को समीक्षण ध्यान में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है, अतः सिद्ध बनने का संकल्प करके हमेशा बहुत समय तक इस संकल्प को बार-बार दोहराकर इसे दृढ़ बनाना चाहिए और स्वयं की (आत्मा की) सिद्ध होने की दशा की कल्पना करनी चाहिए। इससे मनुष्य के मन में सांसारिक बातों व कामों के चित्र मिट जाते हैं। उसका भौतिक जीवन आध्यात्मिक जीवन बन जाता है, यह सिद्ध-पद प्राप्ति की साधना है। ये सिद्धों का अरूपी ध्यान जीवन लक्ष्य प्राप्त करने में सहायक हो सकता है।

2. अहं छोड़ने के लिए स्वाध्याय का पाठ—

“बड़ा मत समझो स्वयं को।।

बड़ा समझो बड़ों को, गुरुजनों को, संतों को।

दयावान को, सत्यवान को, शीलवान को, धर्मी को।।”

चिंतन-मनन-स्वयं को बड़ा अर्थात् बलवान, बुद्धिमान, धनवान व धार्मिक समझना और अपने बड़प्पन का प्रदर्शन करना अहं (अभिमान) है। बड़ों को अर्थात् गुरुजनों को, संतों को, धर्मात्माओं को बड़ा समझना व उनकी सुसेवा करना विनय है। अहं का पश्चात्ताप करने से अहं और पाप नष्ट हो जाते हैं। अहं से हानि होती है और दुःख मिलता है। विनय से वाहुदलीजी की भांति मोक्ष मिलता है। “विनयवान भगवान हैं बनता।”

परिवार मोह छोड़ने का स्वाध्याय का दूसरा पाठ—

परिवार अपना नहीं बना रहता।

चिंतन—परिवार हमें हमारे कर्म दंड से नहीं बचा सकता। परिवार हमें हमारे कर्मफल से मिलने वाले सुख से अधिक सुख दे नहीं सकता।

उपादान—निमित्त-संबंध अर्थात् लेना-देना समाप्त होने पर परिवार हमें अपने साथ रख नहीं सकता। आत्माओं में पारिवारिक संबंध होते ही नहीं। परिवार मोह में मरने वाली महेशदत्त की माता कुतिया बनी और परिवार मोह छूटते ही मरुदेवी माता मोक्ष को प्राप्त हुई।

7. लोभ छोड़ने के लिए स्वाध्याय का पाठ—

“सिद्ध बनूंगा, सिद्ध बनूंगा, धन का लोभी नहीं बनूंगा।”

चिंतन—संसार में लोभ ही पाप और सब दुःखों का मूल है। धन के लिए दूसरों का शोषण नहीं करना चाहिए। जैसे मधुमक्खियाँ फूलों से शहद इकट्ठा करती हैं वैसे ही गृहस्थ को साधारण लाभ (मुनाफा) या वेतन लेना चाहिए।

8. “णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं” या नमस्कार मंत्र का बार-बार जप करना और ध्यान करना सब पापों को नष्ट करता है। इसमें णमो सिद्धाणं पद का, सिद्धों की अटल अवगाहना का, सिद्धों के अमूर्त भाव का और उनके आठ गुणों का ध्यान किया जा सकता है।

9. ऊपर वाले ध्यान और चिंतन की विस्तृत सामग्री कषाय-मुक्ति तीसरा भाग, सातवां भाग और ध्यान एक अनुशीलन में दी गई है।

10. सदभावना—“नहीं दुःख हो, नहीं पतन हो। किन्तु सुख संग आत्मोन्नति हो।”

अर्थ—जिस काम को हम करें उनसे किसी को दुःख नहीं पहुँचे और उनका और हमारा दोनों का पतन भी नहीं हो किन्तु दूसरों को सुख पहुँचे और साथ-साथ उनकी और हमारी दोनों की आत्मा का भी उत्थान हो, वही काम सदभावना युक्त होगा।

11. दान में प्रथम स्थान अभयदान का है। इससे सुख और मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। दान में सुपात्रदान और अनुकम्पा दान का भी बड़ा महत्त्व है। किसी भी जीव को अपनी आत्मा के समान समझ कर सहयोग दिया जाय या उसकी सम्यक् सेवा की जाय तो वह भी सुख और मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है। किसी भी प्राणी को दाहरी दीन-हीन, करुणाजनक

3. क्रोध छोड़ने के लिए स्वाध्याय करने का पाठ—

दोष मत दो निमित्त को, दोष दो तुम स्वयं को।

निज कर्म फल ही है मिला, तब निमित्त बेचारा क्या करे ।।

चिंतन—मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदायी, मुनि अर्जुनमाली, मुनि दृढ़ प्रहारी आदि ने निमित्त को दोष नहीं दिया, स्वयं को ही दोषी माना, इसलिए वे मोक्ष चले गये।

4. देहासक्ति (शरीर का मोह छोड़ने के लिए स्वाध्याय का पाठ—

“शरीर मेरा नहीं है, शरीर नाशवान है, यह मुझसे अलग है, मैं इस शरीर से अलग हूँ, मैं (आत्मा) सारे शरीर में फैला हुआ भी शरीर से अलग हूँ।”

शरीर मोह छूटने के स्वाध्याय का दूसरा पाठ—“सुख में फूल मत, दुःख में रो मत, सिद्ध बनेगा।”

चिंतन—शरीर मेरा नहीं है, यह नाशवान है, इससे सुख की और दुःख की अनुभूति होती है। इन अनुभूतियों से बचने वाला सिद्ध बन जाता है।

5. आत्मध्यान का पाठ—

आत्मा हूँ मैं, देह भिन्न हूँ मैं अमूर्त हूँ चेतन हूँ।

मैं अवद्य हूँ, अदाह्य हूँ, अजर-अमर हूँ, शाश्वत हूँ॥

शक्ति पुंज हूँ, ज्ञानरूप हूँ, आनन्दधन हूँ, जीवन हूँ।

निराकार हूँ, निर्विकार हूँ, विमल ज्योति हूँ, आत्मा हूँ।।

6. परिवार-मोह छोड़ने के लिए स्वाध्याय का पाठ—

"परिवार अपना न हुआ न होगा।"

चिंतन—जीव अपने कर्मों का फल भोगने के लिए और अपना कर्जा चुकाने के लिए उपादान या निमित्त बन कर परिवार में आता है और परिवार वालों से लेना-देना समाप्त होने पर उनसे अलग हो जाता है। कर्ण, कबीर, शकुन्तला, अजापुत्र आदि को जन्मते ही माता-पिता से अलग होना पड़ा। बाली-सुग्रीव को, रावण-विभीषण को भाई कैसे माना जाए ? उग्रसेन और कंस को, हिरण्यकश्यप और प्रह्लाद को पिता-पुत्र कैसे माना जाए ? किसी भी जीव का किसी भी जीव के साथ हमेशा के लिए स्थायी पारिवारिक संबंध नहीं होता।

परिवार मोह छोड़ने का स्वाध्याय का दूसरा पाठ—

परिवार अपना नहीं बना रहता ।

चिंतन—परिवार हमें हमारे कर्म दंड से नहीं बचा सकता । परिवार हमें हमारे कर्मफल से मिलने वाले सुख से अधिक सुख दे नहीं सकता । उपादान—निमित्त—संबंध अर्थात् लेना-देना समाप्त होने पर परिवार हमें अपने साथ रख नहीं सकता । आत्माओं में पारिवारिक संबंध होते ही नहीं । परिवार मोह में मरने वाली महेशदत्त की माता कुतिया बनी और परिवार मोह छूटते ही मरुदेवी माता मोक्ष को प्राप्त हुई ।

7. लोभ छोड़ने के लिए स्वाध्याय का पाठ—

“सिद्ध बनूंगा, सिद्ध बनूंगा, धन का लोभी नहीं बनूंगा ।”

चिंतन—संसार में लोभ ही पाप और सब दुःखों का मूल है । धन के लिए दूसरों का शोषण नहीं करना चाहिए । जैसे मधुमक्खियाँ फूलों से शहद इकट्ठा करती हैं वैसे ही गृहस्थ को साधारण लाभ (मुनाफा) या वेतन लेना चाहिए ।

8. “णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं” या नमस्कार मंत्र का बार-बार जप करना और ध्यान करना सब पापों को नष्ट करता है । इसमें णमो सिद्धाणं पद का, सिद्धों की अटल अवगाहना का, सिद्धों के अमूर्त भाव का और उनके आठ गुणों का ध्यान किया जा सकता है ।

9. ऊपर वाले ध्यान और चिंतन की विस्तृत सामग्री कषाय-मुक्ति तीसरा भाग, सातवां भाग और ध्यान एक अनुशीलन में दी गई है ।

10. सद्भावना—“नहीं दुःख हो, नहीं पतन हो । किन्तु सुख संग आत्मोन्नति हो ।”

अर्थ—जिस काम को हम करें उनसे किसी को दुःख नहीं पहुँचे और उनका और हमारा दोनों का पतन भी नहीं हो किन्तु दूसरों को सुख पहुँचे और साथ-साथ उनकी और हमारी दोनों की आत्मा का भी उत्थान हो, वही काम सद्भावना युक्त होगा ।

11. दान में प्रथम स्थान अभयदान का है । इससे सुख और मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है । दान में सुपात्रदान और अनुकम्पा दान का भी बड़ा महत्त्व है । किसी भी जीव को अपनी आत्मा के समान समझ कर सहयोग दिया जाय या उसकी सम्यक् सेवा की जाय तो यह भी सुख और मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है । किसी भी प्राणी को बाहरी दीन-हीन, करुणाजनक

17. अशुभ कर्म के उदय को रोकना और शुभ कर्म को उदय में लाना हमारे हाथ में नहीं, महापुरुषों की बात अलग है। वे कभी-कभी केवली समुद्घात के समय या कर्मों की उदीरणा करने के लिए उन कर्मों को उनके उदयकाल से पहले उदय में लाकर और भोग कर समाप्त कर लेते हैं।

18. धन का आना और धन का चला जाना कर्मों का खेल है। अतः मनुष्य को लोभ में न पड़कर हमेशा शुभ पुरुषार्थ ही करना चाहिए।

19. कभी-कभी झूठ, कपट, हिंसा आदि से धन आ जाता है तो हम समझते हैं कि अशुभ पुरुषार्थ से धन आ गया है, इसलिये अशुभ पुरुषार्थ करते रहें। लेकिन यह हमारा भ्रम है। हमें पापकर्म से जो धन वर्तमान में मिलता है वह धन वास्वत में पापकर्म से नहीं मिला। वह तो पूर्व में किए हुए किसी शुभ कर्म के उदय से मिला है, जिसका हमें हमारे अल्पज्ञान के कारण पता ही नहीं चलता। इस शुभ कर्म के उदय के समय यदि हम अशुभ कर्म नहीं भी करें तो भी उस पूर्वकृत शुभ कर्म के प्रभाव से यह धन आ ही जाता है। शुभ कर्मों के प्रभाव से कभी-कभी चुपचाप बैठे हुए मनुष्य के पास भी धन आ जाता है। जैसे शालिभद्रजी या धन्नाजी को मिला करता था। तीर्थकरों को जब वे वार्षिक दान देते हैं उस समय उनके पास देवताओं द्वारा धन पहुँच जाता है, करोड़पतियों के घर में जो बच्चे जन्म लेते हैं वे बच्चे उसी समय करोड़ों रुपयों के मालिक हो जाते हैं। गोद या वसीयत आदि से भी बिना कमाए धन आ जाता है।

20. यदि दुःख धन से दूर हो सकता होता तो संसार के लाखों धनवान मनुष्य दुःखी नहीं रहते। वे धन से सुख खरीद लेते। हमारे द्वारा किए अशुभ कर्मों का और असाध्य रोगों का इलाज धन होते हुए भी नहीं हो सकता। अधिक धन के संग्रह से कुछ लोगों में बुरी आदतें पड़ जाती हैं और घर में फूट और कलह हो जाती है। चोर, डाकुओं, धोखेबाजों और हत्यारों का भय बना रहता है।

21. सुख मिलता है सातावेदनीय नामके शुभ कर्म के उदय से। हम देखते हैं और सुनते हैं कि हजारों साधारण और गरीब मनुष्य, मजदूर आदि धन के अभाव में भी सुखी हैं। उसका कारण उनके सातावेदनीय कर्म का उदय ही माना गया है।

22. लोगों का यह भ्रम है कि धन के बिना बहुत से काम रुक जाते

उस जीव की इच्छा न होते हुए भी उससे अच्छा या बुरा पुरुषार्थ करवाता है, उसको हितकारी या अहितकारी निमित्त से मिलाता है, उसको क्षणभर में अमीर या गरीब बना देता है, उसे कभी सुखी या कभी दुःखी बनाता है और उसके जीवन की सारी सुव्यवस्था या कुव्यवस्था करता है। अतः सुख या दुःख आने पर भी किसी से भी राग-द्वेष नहीं करना चाहिए क्योंकि हमारे अपने कर्मों से ही हमें सुख-दुःख मिलता है।

27. कभी-कभी किसी पूर्वजन्म के पाप से धन का आना रुका हुआ हो तो वर्तमान के शुभदान, पुण्य, धर्म या शुभकर्म करने से धन की वर्षा होने लगती है।

28. “बाहर कुछ नहीं, सब कुछ भीतर।

रक्षक भीतर, भक्षक भीतर।

चिंतन—शरीर के भीतर हमारी आत्मा के साथ चिपके हुए सूक्ष्म शुभ कर्म पुद्गल सज्जनों को हमारे सुख का निमित्त बनाते हैं और अशुभ कर्म पुद्गल दुर्जनों को हमारे दुःख का निमित्त बनाते हैं। इसलिए किसी से राग-द्वेष करना भूल है।

29. अप्रत्यक्ष रूप से धर्मात्मा, पुण्यात्मा, सच्चा समाज सेवक उस मनुष्य को समझा जाय जो सामाजिक रीति-रिवाजों में जैसे विवाह आदि में दहेज, रेशनी, बाजा, बहुत बड़ी बारात, बहुत खर्चीले भोजन आदि की व्यवस्था में धन के खर्च को घटाता है जिससे हजारों साधारण मनुष्यों को खर्चा घट जाने से अनीति, पाप और हिंसा द्वारा धन कमाने के लिए मजबूर नहीं होना पड़े।

30. ज्ञानवार्ता—1. शुभ कर्मों के प्रभाव से शत्रु द्वारा की हुई हानि लाभ में बदल जाती है। जैसे—कौरवों द्वारा दिए गए जहर से भीम को लाभ ही हुआ। 2. प्रद्युम्नकुमार के जन्मते ही देवता द्वारा हरण किया जाना और उसे जंगल में भारी पत्थर की शिला के नीचे दबाया जाना प्रद्युम्नकुमार के लिए बहुत लाभ का कारण बना। 3. मुनि गजसुकुमालजी को उनके सिर पर अंगारे रखे जाने का दंड निन्यानवे लाख भव के बाद मिला। 4. अच्छी भावना से की गई सम्यक् सेवा का फल बहुत बड़ी मात्रा में मिलता है। 5. सत्य बोलने के कारण महाराजा हरिश्चन्द्र में तपस्वियों और देवताओं से भी अधिक ताकत थी। 6. अहिंसा, संयम, तप और धर्म पालने वालों को देवता भी नमस्कार करते हैं। 7. अपने माता-पिता, वृद्धों और संतों की सेवा

नाश हो जाते हैं। 26. अशुभ कर्मों का बंध अहंकार के कारण नैकाचित बन सकता है। 27. किसी से अपनी अनावश्यक सेवा कराना पाप है और दूसरों की आवश्यक सुसेवा करना धर्म है। 28. कपट से किसी के पास धन नहीं आता। यदि आता है तो ठहरता नहीं, यदि ठहरता है तो वह धन उसे बरबाद करके चला जाता है। 29. शुभ कर्मों के उदय होने पर ही देवता, तांत्रिक या मित्र आदि सुख के निमित्त बन सकते हैं। 30. मनुष्य चाहे डॉक्टर, इंजीनियर, वकील या बहुत बड़ा व्यापारी आदि कुछ भी बन जावे किन्तु शुभ कर्मों के उदय के बिना उसे स्वस्थ शरीर, सुखद परिवार, शुभचिंतक, मित्र, मन की शांति, धन और सुख नहीं मिलता। 31. सदा दूसरों का भला करने वाला तीर्थंकर बन जाता है। 32. टेलीविजन से आँखें बहुत जल्दी खराब हो जाती हैं। कम से कम बारह फुट दूर बैठकर देखना चाहिए। 33. बड़ों की तथा अनुभवी लोगों की राय लेने वाला अहंकार, दुःख व हानि से बच जाता है। 34. मनुष्य अपने परिवार वालों के कर्म को नहीं बदल सकता इसलिए वह व्यर्थ में ही उनके लिए चिंता करता है। 35. गृह कार्य के कार्य का बँटवारा हो जाने से सदस्यों में मन मुटाव नहीं होता। 36. माता-पिता द्वारा घर की जमीन और सम्पत्ति का बँटवारा हो जाने से उनकी संतान में झगड़ा नहीं होता। 37. मनुष्य के बत्तीस दाँत हैं इसलिए भोजन के हर एक ग्रास को बत्तीस से ज्यादा बार चबा-चबा कर ही खाना चाहिए। दूध आदि पीने की चीजों को धीरे-धीरे पीना चाहिए। 38. जो मनुष्य दूसरों में गुणों को ही देखता है और उनकी सराहना करता है, वह गुणवान और विनयवान बन जाता है।

31. इस पुस्तक के प्रारम्भ में दिए गए आठ पाठों का प्रतिदिन नियमित रूप से स्वाध्याय करने के साथ-साथ उन्हें आचरण में उतारने का अभ्यास कीजिए और बार-बार दोहराइए, चिंतन कीजिए और याद रखिये।

1. चौथा पाठ—“शरीर मेरा नहीं है। यह नाशवान है।” भोजन, रोग, चोर, दुःख-दर्द, तप, उपसर्ग, मनोरंजन या खुशी आदि के समय इन्हें याद रखने से दुःखानुभूति-सुखानुभूति, हर्ष-विषाद और राग-द्वेष से मनुष्य बच जाता है और नये कर्म नहीं बंधते।

2. छठा पाठ—परिवार अपना हमेशा बना नहीं रहता। परिवार वालों के साथ या उनके बारे में बातचीत या किसी कार्य के समय इस पाठ को दोहराने और याद रखने से परिवार मोह छूट जाता है।

बनाया है, केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति की है और दूसरों के काम में बाधा और अन्तराय पहुँचाई है, उन लोगों ने अन्तराय कर्म और असातावेदनीय अर्थात् दुःख देने वाले अशुभ कर्मों का बंध किया है। उनको उनके अशुभ कर्म और अन्तराय कर्म धन और सुख को प्राप्ति नहीं होने देते।

अन्तराय कर्म करने वालों को बाधा ही बाधा मिलती है। दूसरों के धन लाभ में अन्तराय डालने वाले को लाभान्तराय के कारण धन का लाभ नहीं होता। दूसरों के भोजन में अन्तराय डालने वाले को भोगान्तराय के कारण धन होते हुए भी भोजन की प्राप्ति नहीं होती है। वह बीमार पड़ जाता है और कुछ खा नहीं सकता। दूसरों के शिक्षा और ज्ञान प्राप्ति में अन्तराय डालने वाले को विद्या और ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती।

अन्तराय कर्म में महान शक्ति है। तीर्थंकर ऋषभदेव को भी बारह महीनों तक निराहार (भूखा) रहना पड़ा। तीर्थंकर महावीर को भी पाँच महीने सताईस दिन तक अभिग्रह पूरा न होने के कारण निराहार रहना पड़ा। जब तक अन्तराय कर्म की अवधि समाप्त नहीं होती तब तक दिन-रात कठोर परिश्रम करने पर भी मनुष्य को धन और सुख का लाभ नहीं होता।

धन और सुख उन्हें मिलता है जो दूसरों को दान, भूखों को भोजन, प्यासों को पानी, वस्त्रहीन को वस्त्र, आश्रयहीन को आश्रय, रोगी को दवा, दुःखी को सात्वना देते हैं और निराश्रित, पीड़ित, विकलांग, रोगी आदि की सेवा करते हैं। ऐसे परोपकारी लोगों में भी जो अधिक पुण्य करते हैं उनको साधारण पुरुषार्थ करने पर और कभी-कभी बिलकुल पुरुषार्थ नहीं करने पर भी केवल पूर्वकृत पुण्य के कारण धन और सुख की प्राप्ति हो जाती है। शालिभद्र को उनके पूर्वकृत महापुण्य के कारण परिश्रम किए बिना भी देवलोक से धन आता रहा। धन्नाजी को साधारण पुरुषार्थ से ही हमेशा धन की प्राप्ति होती रही। तीर्थंकरों को वार्षिक दान देने के लिए पूर्वकृत महापुण्य के कारण देवों द्वारा बिना किसी परिश्रम के धन प्राप्त होता था।

करोड़पति के घर में जन्म लेने वाला बच्चा जन्म लेते ही करोड़ों रुपयों का स्वामी बन जाता है। कारकुण्ड जिसका बचपन चांडाल के घर में बीता, उसको भी आसानी से ही राज्य मिल गया। किसी को वसीयत से और किसी को जमीन में गड़ा हुआ धन मिल जाता है। इस धन की

कर्म सिद्धांत का यह अटल नियम है कि मनुष्य दूसरों को सुख या दुःख, अन्न या धन जो कुछ जैसा देता है वह वैसा ही सुख या दुःख अन्न या धन उसी रूप में या अन्य किसी रूप में पाता है और यदि एक देता है तो उस दान के बदले में सौ या हजार या लाख या करोड़ गुना पा सकता है। सेठ धनावह के घर में तीर्थंकर महावीर को उड़द के बाकले बहराये गये। उसके बदले में वहाँ सोने की वर्षा हो गई। धन्नाजी को पूर्वभव में साध्वीजी को खीर बहराने के बदले धन, सुख और सिद्ध पद की प्राप्ति हुई। जो दान देता है, शील पालता है, तप करता है, समता भाव रखता है, शुभ भावना भाता है, स्वाध्याय करता है और दूसरों की सम्यक् सेवा करता है वह उसके बदले में धन, सुख, स्वर्ग और मोक्ष भी पा सकता है।

नहीं रोकूंगा, सिद्ध बनूंगा

आचार्यश्री 1008 श्री नानालालजी म. सा. ने अपने एक प्रवचन में फरमाया है कि जीव की जैसी भावना उसकी मृत्यु के समय होती है, वैसी ही उसकी गति बन जाती है। महापुरुष तो अपने गहरे ज्ञान से और मर्यादित जीवन से महाव्रतों का पालन करते हुए अपनी मति और गति सुधार लेते हैं, किन्तु हम साधारण श्रावक हमेशा बहुत समय तक शरीर की आसक्ति और परिवार मोह छूटने की भावनाओं का स्वाध्याय करें और अभ्यास भी करें तो हमारी भी मति और गति सुधर सकती है। स्वाध्याय सबसे बड़ा तप है और इसमें भावनाओं को सुधारने की महान शक्ति है।

मनुष्य को साधारणतया उसके अन्तिम समय में या तो शरीर का कष्ट सताता है या परिवार का मोह बाँध रखता है। शरीर का मोह छोड़ने के लिए इस प्रकार का चिंतन किया जा सकता है—“यह शरीर मेरा नहीं है। इसकी रक्षा होना या नहीं होना कर्मों के हाथ में है।” इसके लिए स्वाध्याय इस प्रकार किया जा सकता है—“शरीर के कष्ट व दुःखों के समय चिंता, नहीं करूंगा। मुनि गजसुकुमाल शरीर कष्ट से नहीं रोये, वे सिद्ध बने। मैं भी सिद्ध बनूंगा।”

परिवार का मोह जीव को संसार में बाँधे रखता है। कभी-कभी नरक में भी भेज देता है। परिवार का मोह छोड़ने के लिए इस प्रकार का चिंतन करना चाहिए—“परिवार बंधन किसी को कर्मों के दंड से नहीं बचा सकते।

इनके साथ-साथ जीवन को ऊँचा उठाने व सिद्ध-पद पाने के लिए इस प्रकार का चिंतन व स्वाध्याय किया जा सकता है—(क) “दोष मत दो निमित्त को” इस भावना के स्वाध्याय से मनुष्य क्रोध से मुक्त हो जाता है। (ख) स्वयं को अधिक बुद्धिमान् या धनवान या धर्मात्मा समझने वाला अहंकारी बन जाता है और वह फूल उठता है। बाहुबलीजी ने अहंकार छोड़ा और वे केवली और बाद में सिद्ध बने। (ग) “णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं” व नवकार का ध्यान करने वाला सब पापों से मुक्त हो जाता है। और (घ) अपने किए हुए पापों का पश्चात्ताप करने वाला भी अपने पापों को प्रायः नष्ट कर देता है। पश्चात्ताप करने से महासती मृगावतीजी, मुनि चण्डरुद्राचार्य और मुनि कूरगडुक को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी।



‘समीक्षण ध्यान’ मेरी दृष्टि में

कषाय मुक्ति : नवां भाग
समीक्षण ध्यान एवं स्वाध्याय संग्रह

1. आचार्यश्री 1008 श्री नानालालजी म. सा. ने समता दर्शन और समीक्षण ध्यान पर प्रकाश डालकर मानव जीवन का बहुत उपकार किया है। समीक्षण ध्यान का अर्थ है—अपने आत्मा के उद्धार और सुधार हेतु अपने वेचारों और कार्यों को देखना, अपने पाप और पुण्य का हिसाब देखना, पेछले किये हुए अशुभ कर्मों से बचते हुए अपने जीवन का नवनिर्माण और सद्गुण पद प्राप्त करने के लिए स्वाध्याय और अभ्यास करना।

2. समीक्षण ध्यानकर्ता का यह लक्ष्य होता है कि उसकी विचारधारा व आचरण ऐसे बन जावें कि उसके शरीर, वचन व मन से दूसरों का बुरा न हो, किसी की हिंसा न हो। उसके किसी भी कार्य से दूसरों को दुःख नहीं हो, उनका पतन नहीं हो, उनको सुख मिले और उनकी आत्मा का उत्थान हो।

न ही दुःख हो न ही पतन हो।

किन्तु सुख संग आत्मोन्नति हो।।

इसके साथ ही साथ स्वयं की आत्मा का उत्थान हो और इसके लिए अपनी तरफ से कुछ त्याग करने की जरूरत हो तो वह त्याग करे।

यह अखेद, अद्वेष, अभय, अभिमानहीन, मोहहीन, चिंताहीन, रागहीन बनने की साधना है। वह बाहर की प्रतिकूल या अनुकूल स्थितियों से प्रभावित नहीं होता और भीतर से विचलित नहीं होता। वह पूर्ण वीतराग बनने का प्रयास करता है। ये कार्य भी तभी हो सकता है जबकि हम अपने जीवन के लक्ष्य को समझ लें और स्वाध्याय, जप द्वारा उसे पुष्ट बना लें।

3. इस दृष्टि से समीक्षण ध्यान को तीन भागों में बांटा जा सकता है। सर्वप्रथम मानव जीवन के लक्ष्य को समझना और उसे पुष्ट करना। दूसरे नम्बर पर अपने पहले किए हुए अशुभ कर्मों को पश्चात्ताप द्वारा और समतापूर्वक भोग-भोग कर उनको क्षय करना। तीसरे नम्बर पर नये अशुभ

कर्मों से बचते हुए जीवन का नवनिर्माण करना अर्थात् अपने शरीर, परिवार, धन आदि की चिंता, मोह से बचना।

4. लक्ष्य का स्थिरीकरण—मनुष्य को धन और सुख की चिंता अधिक सताती है तथा विद्वानों और पंडितों को अपनी प्रसिद्धि और पूजा की प्यास लगी रहती है। मनुष्य को धन और सुख के सम्बन्ध में छः बातों का पूरा ध्यान रखना चाहिए, जिससे वह धन व सुख के लोभ से बच सके। (क) जाने वाला धन चला ही जाता है। इसे चले जाने से रोकने वाली शक्ति संसार में नहीं है। अमीर आदमी भी पापोदय से गरीब हो जाता है। (ख) अन्तराय कर्म का उदय हो तो कठिन से कठिन मेहनत करने पर भी धन नहीं आता। कभी-कभी तो बुद्धि विपरीत बनकर मनुष्य के धन और सुख दोनों का विनाश कर देती है। (ग) धन होते हुए भी सातावेदनीय कर्म के उदय के बिना सुख नहीं मिलता। (घ) सातावेदनीय कर्म के उदय होने से साधारण आमदनी होते हुए भी मनुष्य सुखी बना रहता है। (ङ) यदि किसी काम के होने का योग नहीं हो तो अपार धन के होते हुए भी वह काम नहीं बनता। (च) यदि किसी काम के बनने का योग हो तो धन नहीं होते हुए भी कहीं से सहायता मिलकर वह कार्य बन जाता है। इन छः बातों का ध्यान रखकर मनुष्य को धन और सुख का लोभ छोड़ना चाहिए और धन को हमेशा दान और शुभ कार्यों में लगाना चाहिए। दान से धन और सुख दोनों ही मिलते हैं। दान में महान शक्ति है।

5. विद्वान, पंडित और धार्मिक लोगों को प्रसिद्धि और पूजा की भूख सताती है, जिससे अहम् भाव से उनकी बुद्धि विपरीत बनकर उनका पतन और विनाश करा देती है।

6. मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है सिद्ध पद पाना और सिद्ध पद वही पा सकता है, जो धन और सुख का लोभ छोड़ दे और प्रसिद्धि व पूजा का लोभ छोड़ दे।

7. पुराने अशुभ कर्मों का व पापों का क्षय जिस प्रकार किरान खेत में बीज बोता है, उससे पहले वह खेत को साफ करता है। इसी प्रकार सिद्ध पद पाने की इच्छा करने वाला प्राणी अपने पुराने पापों को याद करता है। उनके लिए परवात्ताप व प्रायश्चित्त करता है और उदय में आने वाले कर्मों को समतापूर्वक भोग-भोग कर क्षय करता है।

8. जीवन का नवनिर्माण—समीक्षण ध्यान में तीसरी मुख्य बात है कि नवीन कर्मों को आने से रोक देना। यह तभी हो सकता है जबकि मनुष्य

कषाय को और मोह-ममता को छोड़ दे। इस कार्य को करने के दो उपाय हैं। प्रथम उपाय है स्वाध्याय और दूसरा उपाय अभ्यास। साधारणतया शरीर की आसक्ति, परिवार का मोह, क्रोध और अहंकार इन चारों अवगुणों को छोड़ने से जीवन का नवनिर्माण हो सकता है और वह कभी न कभी सिद्ध पद पा सकता है।

9. शरीर की आसक्ति को छोड़ने के लिए नीचे लिखी भावनाओं का हमेशा वर्षों तक स्वाध्याय, चिंतन करना चाहिए।

(क) दुःख में रो मत, भौतिक सुख में फूल मत, सिद्ध बनेगा।

(ख) शरीर बनेगा मिट्टी, मैं बनूंगा सिद्ध।

(ग) मैं भीतर हूँ, मैं सिद्ध बनूंगा, सिद्ध लोक में सिद्ध दशा में अटल अवगाहना प्राप्त करूंगा।

(घ) शरीर कष्ट में, उपसर्गों में रोना छोड़ो, सिद्ध बनोगे। मुनि गजसुकुमाल नहीं रोये, वे सिद्ध बने।

10. परिवार के मोह से मुक्ति पाने के लिए इन भावनाओं का स्वाध्याय किया जा सकता है।

(क) मनुष्य के उपादान में अर्थात् भाग्य में यदि धन और सुख पाने का योग नहीं हो तो उसे परिवार से भी धन और सुख नहीं मिलता है।

(ख) कर्म परिवार वालों को क्षण भर में दूर-दूर कर देता है।

(ग) कौन है अपना ? कोई नहीं अपना।

11. क्रोध से मुक्ति पाने के लिए इस प्रकार का स्वाध्याय किया जा सकता है—दोष मत दो निमित्त को, यह कर्म-फल ही है मिला, निमित्त बेचारा क्या करे।

12. अहंकार से मुक्ति पाने के लिए इस प्रकार का स्वाध्याय किया जा सकता है। अहंकार बुद्धि को विपरीत बना कर बड़ों-बड़ों का विनाश कर देता है।

बड़ा मत समझो स्वयं को।

बड़ा समझो बड़ों को, गुरुजनों को, संतों को।

13. संक्षेप में समीक्षण ध्यान के लिए प्रतिकूल को अनुकूल और अनुकूल को प्रतिकूल बनाने का स्वाध्याय कीजिए और इसकी कला संतों से सीखिए और उनका अभ्यास कीजिए। रो मत दुःख में, फूल मत सुख में, सिद्ध बनेगा। इस भावना का भी हमेशा बहुत देर तक स्वाध्याय कीजिए।

इसी प्रकार अनुकूल को प्रतिकूल समझ कर सुख भोगों से बंधने वाले कर्मों से बचा जा सकता है। उस समय इस प्रकार स्वाध्याय करना चाहिए कि—

1. यह सुख सच्चा सुख नहीं है। 2. यह आर्तध्यान है। 3. इंद्रियों से मिलने वाले सुख से तृप्ति नहीं होती है। 4. उससे तृष्णा बढ़ती है। 5. इससे आत्मा की हानि होती है। 6. इससे आत्मा को लाभ नहीं होता है। 7. इन सुखों में रस लेने से नये कर्म आते हैं। 8. इसमें रस लेने वाला संसार में भटकता रहता है। 9. भौतिक सुखों को सुख नहीं समझकर इनमें रस नहीं लेने वाला ही सिद्ध बनता है।

प्रतिकूल को अनुकूल समझना और अनुकूल को प्रतिकूल समझना समीक्षण ध्यान का महत्त्वपूर्ण अंग है।

संक्षेप में नीचे लिखी भावना को हमेशा बहुत देर तक भाते रहिये—“शरीर की, परिवार की चिंता छोड़ो, ममता छोड़ो, दुःख-दर्द में रोना छोड़ो, भौतिक सुख में फूलना छोड़ो, परिवार और शरीर की चिंता छोड़ो क्योंकि दोनों की रक्षा केवल कर्मों के हाथ में है, ममता छोड़ो क्योंकि आयु कर्म और दूसरे कर्म जीव को परिवार से दूर कर देते हैं, दुःख-दर्द में रोना छोड़ो क्योंकि रोने से दुःख दूर नहीं होता, रोने से नवीन अशुभ कर्म आते हैं और वे बाद में दुःख देते हैं, भौतिक सुख में फूलना छोड़ो क्योंकि यह भौतिक सुख खाज-खुजली की तरह है, जितनी खाज शरीर पर करेंगे उतनी ही अधिक खाज करने की इच्छा बढ़ती जावेगी, सुख भोगों से कभी तृप्ति नहीं होती है। इससे नवीन अशुभ कर्मों का बंध भी होता है।

“शरीर बनेगा मिट्टी—मैं बनूंगा सिद्ध”

कुछ लोग अपने जीवन के अन्तिम दिनों में पछताते हुए और यह कहते हुए पाये गये हैं—हमने अपना जीवन शरीर के मोह में और सुख भोगों में खो दिया। हमने अपनी आत्मा के साथ ले जाने के लिए कुछ भी नहीं कमाया। इस पछतावे से बचने के लिए आप आज से ही प्रतिदिन कम से कम डेढ़-दो घंटे नीचे लिखे हुए चार सूत्रों का जाप (स्वाध्याय) और चिंतन-मनन कीजिए—

1. शरीर बनेगा मिट्टी। इस सूत्र के स्वाध्याय के समय अपनी मृत्यु के बाद अपने शरीर के मिट्टी बन जाने की दिशा में कल्पना भी कीजिए।

दूसरे चरण में यह ज्ञान दर्शन अर्थात् दृढ़ श्रद्धा का रूप ले लेते हैं और तीसरे चरण में यह दर्शन आचरण में आकर चारित्र्य का रूप ले लेता है। यही मोक्ष का मार्ग है। यह स्वाध्याय आभ्यन्तर तप भी है। इससे कर्मों की निर्जरा भी होती है। एक विद्वान ने लिखा है कि किसी विचार का दस लाख बार जप हो जानें से वह अनन्त काल तक जीव के साथ उसके आचरण में बना रहता है।

“शरीर बनेगा मिट्टी, मैं बनूंगा सिद्ध।” इन दो सूत्रों का अधिक से अधिक स्वाध्याय कीजिए।

साधना की विधि

बहुत से लोगों ने संतो के बहुत से प्रवचन सुने हैं किन्तु उन्हें उनमें से बहुत कम बातें याद हैं और जो याद हैं उनमें से बहुत कम बातें उनके जीवन में, आचरण में आती हैं। यदि प्रवचन सुनकर उनमें से कुछ बातें घर आकर कॉपी में नोट कर लें तो कभी-कभी इनकी पुनरावृत्ति भी हो जाती है और यदि किसी विचार को साधना के लिए हमेशा कुछ महीनों तक प्रतिदिन कुछ समय तक बार-बार दोहरावें, उसे तोते की तरह रटें, इनकी पर्यटना करें, उसका जाप करें, उसके अर्थ और भावार्थ का चिंतन-मनन करें, उस विचार की दृष्टि से अपने कार्यों और घटनाओं का चिंतन-मनन करें तो यह विचार या भावना उस साधक के अवचेतन मन में जम जाती है, आदत का रूप ले लेती है और कुछ महीनों तक इस साधना को जारी रखने से उस साधक का मनचाहा पूर्ण रूपान्तरण भी हो जाता है।

मुनि अर्जुनमाली ने भगवान महावीर द्वारा दिए गए उपदेश की बातों का इसी प्रकार स्वाध्याय किया और साधना से उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। उन्होंने उन उपदेशों को शायद कुछ-कुछ इस प्रकार सूत्रों में बाँध लिया होगा—“संसार में कोई भी जीव किसी का या मेरा शत्रु नहीं है, मैं अपने ही अशुभ कार्यों का फल पा रहा हूँ, यक्ष के प्रभाव में मेरे आ जाने से, मेरे इस निमित्त से 1141 आदमियों की हत्या हुई है, इसके बदले में मुझे कठोर दंड मिलना चाहिए था, किन्तु ये लोग तो बहुत दयालु दिखते हैं, मुझे थोड़ा-सा दण्ड देकर ही छोड़ देते हैं। मुझे समता रखनी चाहिए। मैं इन्हें दोष क्यों दूँ ?.....समतापूर्वक कष्ट सहन करने से मेरे अशुभ कर्म कट जाएँगे.....।” मुनि अर्जुनमाली ने छः महीने तक उपर्युक्त विचारों का स्वाध्याय किया होगा और कष्ट सहने का अभ्यास किया होगा। छः महीने की इस साधना से उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई।

निश्चित है। (च) इसलिए परिवार को अपना समझना और परिवार का मोह करना व्यर्थ है। (छ) परिवार की चिंता छोड़ो, मोह छोड़ो। (ज) मनुष्य के ऊपर परिवार का कर्जा हो सकता है। उसे सम्यक् सेवा द्वारा अपने परिवार व माता-पिता का कर्जा चुकाना चाहिए। प्राणी मात्र की सम्यक् सेवा करना मनुष्य का धर्म है। (झ) चिंता और मोह को छोड़ने वाला अनासक्त बन सकता है और मरुदेवी माता की तरह मोक्ष पा सकता है।

शरीर भावना

शरीर भावना इस प्रकार भायी जा सकती है—

(क) यह शरीर अलग है, मैं अलग हूँ, शरीर नाशवान है। यह मेरा नहीं है।

(ख) शरीर पर कष्ट आने के समय इस कष्ट को भूलने के लिए उस समय नीचे लिखी हुई भावना में लीन हो जाना चाहिए—यह कष्ट मेरे कर्मों का फल है, यह मुझे भोगना ही पड़ेगा। इसको भोगते समय समता रखने से ये कर्म कट जाएंगे और चिंता व आर्तध्यान न होने से नवीन अशुभ कर्म नहीं बंधेंगे। इससे मेरी आत्मा का कुछ भी नहीं बिगड़ा है, मैंने कुछ भी नहीं खोया है, किन्तु मेरा आत्महित ही हुआ है। कर्मों की निर्जरा हो रही है, मैं मोक्ष के नजदीक पहुँच रहा हूँ, इसलिए शरीर की चिंता छोड़ो व शरीर का मोह छोड़ो, इससे मुनि खन्दक, मुनि गजसुकुमाल आदि की तरह मोक्ष मिलेगा।

उपर्युक्त भावना को और अधिक मजबूत बनाने के लिए 8-10 महीनों तक डेढ़-दो घंटे प्रतिदिन स्वाध्याय और चिंतन-मनन करना चाहिए। इसी प्रकार भौतिक सुख के समय भी मनुष्य को फूलना नहीं चाहिए, खुशी नहीं मनानी चाहिए किन्तु स्वाध्याय करना चाहिए कि—“यह सुख भी सच्चा सुख नहीं है, इससे अशुभ कर्मों का बंध होगा।” इस भौतिक सुखानुभूति से बचने वाला ही अनासक्त बन सकता है।

धन, परिवार, शरीर की चिंता करने से अशुभ नारकीय कर्मों का बंध होता है। अनासक्ति भावना की तरह समता भावना, बारह भावनाएँ, आत्मध्यान, आत्म-भावनाएँ, कषाय मुक्ति की भावनाएँ, भगवान का भजन आदि भी मोक्ष प्राप्ति के मार्ग हैं।

चिंता छोड़ो, मोह भी छोड़ो।

अनासक्त को मोक्ष मिलेगा।।

कर्म निर्जरा का चौथा उपाय है—शुद्ध ज्ञान, ध्यान में लीन रहना। शुद्ध ज्ञान के चिंतन से मन अशुद्ध कामों की तरफ नहीं जाता है और इससे ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय भी होता है और मनुष्य के विचार निर्मल (शुद्ध) बनते जाते हैं।

तीन बातें

स्व. आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. ने पद्य की दो पंक्तियों में थोड़े शब्दों में जीवन को ऊँचा करने वाला सब धर्मों का सार बता दिया है—
ग्रंथ पंथ सब जगत् के, बात बतावत तीन,
राम हृदय, मन में दया, तन सेवा में लीन।

‘राम हृदय’ इन शब्दों का भाव है कि मनुष्य भगवान् का अर्थात् सिद्धों का गुणगान, ध्यान और सिद्ध बनने का संकल्प करे तो सिद्धों का ध्यान और सिद्ध बनने का संकल्प करने वाला और इस भावना को दृढ़ बनाने वाला कर्मों की बहुत निर्जरा करता है। इसके साथ-साथ सिद्धों का ध्यान करते हुए और ‘णमो सिद्धाणं’ इस पाठ का जप करते हुए मनुष्य संसारी वातावरण से निकलकर आध्यात्मिक वातावरण और शुद्ध ध्यान में लगा रह सकता है। यह भक्ति मार्ग है और परमात्मा की भक्ति करने वाला मुनि दृढ़ प्रहारी की तरह परमात्मा बन जाता है।

इस पद्य में दूसरी बात यह बताई गई है कि “मनुष्य को अपने मन में सब जीवों के प्रति दया रखनी चाहिए।” दया अर्थात् अनुकम्पा, करुणा आत्मा का सबसे बड़ा गुण है। जो मनुष्य सब जीवों पर पूर्ण दयाभाव रखता है, धर्मरुचि अणगार की तरह क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह से बच जाता है। उसकी आत्मा स्वच्छ, निर्मल और शुद्ध बन जाती है। सभी धर्मों ने दया को, अहिंसा को मनुष्य का प्रथम व सबसे बड़ा धर्म बताया है।

इस पद्य में तीसरी बात ‘तन सेवा में लीन’ बताई गई है। जैन दर्शन में सेवा धर्म को तप से भी ऊँचा स्थान दिया गया है। अगर कोई साधु तपस्या करता है और इससे उसके दूसरे संतों की सेवा करने में बाधा आती हो तो वह तप को छोड़ दे किन्तु दूसरे संतों की सेवा अवश्य करे। दूसरों की सेवा करने से मनुष्य का अभिमान दूर होता है। सेवा वही कर सकता है जो अपने शरीर, परिवार और धन के लोभ को छोड़ता है। सेवा में गृहस्थ और साधु अपनी-अपनी मर्यादाओं का ध्यान रखते हुए अपने आत्म धर्म का और पाँच महाव्रतों का भी पालन कर सकते हैं। इस प्रकार परमात्मा का

है। इसलिए संसार में किसी को अपना शत्रु समझना या निमित्त को दोष देना भूल है। जो किसी को दोष नहीं देता है, वह क्रोध और द्वेष से बच जाता है।

3. परिवार या धन किसी जीव को अशुभ कर्मों के दंड से नहीं बचा सकता इसलिए परिवार के मोह या धन के लोभ से बचना ही राग से बचना है।

4. राग और द्वेष से बचने वाला ही वीतरागी बनता है और वही मोक्ष पाता है।

5. संसार में एक जीव का दूसरे जीव के साथ उपादान निमित्त का सम्बन्ध कर्मों के द्वारा, कर्मों के कारण और कर्मों के विधानानुसार बनता है। इसी उपादान निमित्त का सम्बन्ध निभाने के लिए एक जीव दूसरे जीव के साथ पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-बहन, स्वामी-सेवक आदि के रूप में परिवार में या मित्र-शत्रु के रूप में आते हैं और उपादान निमित्त सम्बन्ध के समाप्ति के साथ ही साथ संसार के दूसरे सारे सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं और एक जीव का दूसरे जीव से वियोग हो जाता है। परिवार केवल उपादान निमित्तों का एक स्थान पर संयोग ही है। इसके स्वाध्याय से मोह से बचा जा सकता है।

6. मनुष्य कर्माधीन है। जीवों को अपने कर्मों का फल भोगने के लिए उपादानों और निमित्तों के रूप में प्रायः एक परिवार में आना पड़ता है। इस प्रकार जन्म के लिए परिवार का चुनाव करना जीव के हाथ में नहीं किन्तु उनके कर्मों के हाथ में है।

7. जब-जब पुराने कर्मों का योग समाप्त हो जाता है और दूसरे नवीन कर्मों का उदय होता है तब-तब जीव को परिवार से अलग होना पड़ता है या मृत्यु जन्म द्वारा दूसरे परिवार में जाना पड़ता है। इस प्रकार मृत्यु और जन्म का समय कर्मों द्वारा साधारणतया नियत होता है।

8. जीव अपने कर्मों का फल जिस उद्योग धन्धे से भोग सके उसे वैसा ही धन्धा करने की या उसे बार-बार बदलने की योजना भी प्रायः कर्मों से बनती है, सम्भव है कभी-कभी कोई बहुत हल्के कर्मों वाला जीव इसमें अपनी उच्च भावना के अनुसार परिवर्तन भी कर सके।

9. भिन्न-भिन्न अन्तराय कर्मों के उदय द्वारा जीव के ज्ञान प्राप्ति में, धन प्राप्ति में, सुख प्राप्ति में, स्वास्थ्य प्राप्ति में बाधाएँ भी कर्मों द्वारा आती

(घ) मैंने पर-हित नहीं किया है। अपना निज कर्ज चुकाया है।
इसके लिए अहं भाव मन में आना भूल है।

(ङ) बड़ा मत समझो स्वयं को, बड़ा समझो बड़ों को, गुरुजनों को, संतों को।

16. मोक्ष जाने में शरीर आसक्ति ही बाधक है। इसे किसी स्वाध्याय से या तप से दूर करने वाला ही मोक्ष पा सकता है। इसका एक सूत्र यह है—“शरीर बनेगा मिट्टी, मैं बनूंगा सिद्ध।” दो-चार वर्ष हमेशा इसका स्वाध्याय और इसके भावार्थ का चिंतन-मनन करते रहना चाहिए।

17. (क) धन का आना और धन का चले जाना कर्मों के हाथ में है। इसका लोभ करने वाला और इसके लिए चिंता करने वाला मनुष्य कभी सुख नहीं पा सकता।

(ख) जिस घर में छोटे, बड़ों का आदर और उनकी सेवा करते हैं और बड़े, छोटों में अच्छे धार्मिक संस्कार डालते हैं किन्तु उन्हें धार्मिक उन्माद से बचाते हैं, उस घर में सभी लोग यदि उनके पूर्व के अशुभ कर्मों का उदय न हो तो प्रायः सभी सुख पाते हैं।

18. महाहिंसा, महाआरम्भ, महापरिग्रह और बड़े-बड़े हिंसा के कारखानों की योजना बनाना अशुभ कर्म बंध का कारण है। जितने दिन तक जिनती बार ऐसे कार्यों का विचार किया जाता रहेगा उतने दिन तक उतनी ही बार अशुभ कर्मों का बंध होता रहेगा और उनका उदय होने पर दुःख पाना होगा।

19. इन चार बातों का हमेशा चिंतन करना चाहिए—

(क) किसी को दोष न देने वाला क्रोध से बच जाता है।

(ख) ज्ञान है थोड़ा, शक्ति है थोड़ी, इसका स्वाध्याय करने वाला अहंकार से बच जाता है।

(ग) परिवार और धन किसी को कर्म बंध से नहीं बचा सकते। इसका स्वाध्याय करने वाला परिवार के मोह और धन लोभ से बच जाता है।

(घ) “शरीर बनेगा मिट्टी, मैं बनूंगा सिद्ध” इसका स्वाध्याय करने वाला सभी आसक्तियों से बच जाता है और मोक्ष प्राप्त करता है।

20. किया हुआ व्यर्थ नहीं जाता, दिया हुआ व्यर्थ नहीं जाता और मुप्त में कुछ नहीं मिलता।

29. दूसरों को गाली देने वाला, दूसरों का बुरा चिंतन करने वाला और बुरा करने वाला निश्चय में अप्रत्यक्ष रूप से अपने अशुभ भावों के कारण अपना ही बुरा करता है।

30. दूसरों का हित सोचने वाला और हित करने वाला निश्चय में अप्रत्यक्ष रूप से अपने शुभ भावों के कारण अपना ही भला करता है और यह तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन करने का एक उपाय है।

31. जिस घर में माता-पिता अधिक धन कमाने की अपेक्षा बच्चों में अच्छे संस्कार डालने पर ध्यान देते हैं और बच्चे माता-पिता को सवरे नमस्कार करते हैं और माता-पिता में पूरी श्रद्धा रखते हैं वह परिवार सुख समृद्धि से परिपूर्ण रहता है।

32. मनुष्य और कुछ नहीं कर सके तो 'णमो सिद्धाणं', णमो सिद्धाणं' इसका स्वाध्याय ज्यादा से ज्यादा समय तक करे, यह भी मोक्ष प्राप्ति का साधन है।

33. दो मित्रों में एक मित्र वेश्या के यहाँ गया किन्तु वहाँ जाकर पश्चात्ताप करने लगा—“हाय ! मैं, कहाँ आ गया, धन्य है मेरा मित्र जो धर्म चर्चा सुन रहा है।” दूसरा मित्र संतों के प्रवचन सुनने गया किन्तु वह सोचने लगा कि “मैं कहाँ इन रूखे शब्दों को सुनने आ गया। धन्य है मेरा मित्र, जो वेश्या के यहाँ जाकर मनोरंजन कर रहा है।” ऐसा सोचकर पहले मित्र ने शुभ कर्मों का उपार्जन किया और दूसरे मित्र ने अशुभ कर्मों का उपार्जन किया। अतः शुभ या अशुभ कर्म अपनी-अपनी भावना के अनुसार बनते हैं।

34. प्रत्येक धार्मिक क्रिया में भावना के साथ विवेक रखने से धर्म होता है, किन्तु विवेक नहीं रखने से अर्थात् जीव रक्षा का ध्यान या यतना नहीं रखने से या उस क्रिया के परिणाम पर ध्यान नहीं रखने से पाप भी हो सकता है। जैसे उपवास करना धर्म है किन्तु गर्भवती महिला यदि उपवास करे तो उसे पाप लगता है।

35. दो साधु हैं, उनमें से एक बीमार है। यदि दूसरा साधु तप करता है और तप के कारण बीमार साधु की सेवा नहीं कर सकता है या बाधा पहुँचती है तो वह तप धर्म नहीं है।

36. कभी-कभी मनुष्य के मन में बहुत निकृष्ट, दुष्ट-भावना आती है जिससे वह बिना कुछ किए हुए ही तन्दुल मत्स्य की तरह और प्रसन्नचंद्र

सिलाई घोंप दी जाती है ताकि बेदाग व अखण्ड खाल निकल आए। इसके बच्चे के रोओं से कोट आदि बनते हैं। कस्तूरी मृग व सीवेट को कस्तूरी के लिए मारा जाता है। मृग की नाभि से कस्तूरी मिलती है। इसके चर्म से चप्पलें, पर्स, खिलौने बनते हैं। कछुए के अवयवों से प्राप्त चर्बी से तेल बनाया जाता है जो सौंदर्य प्रसाधन की तरह काम में लेते हैं। साँप के गॉल ब्लडर से शराब, दवाई बनाई जाती है। मधुमेह—डायबिटीज की इन्सुलिन नामक दवा भेड़, बैल, गाय के अग्न्याशय से प्राप्त होती है।

शेम्पू की जाँच खरगोश की आँखों में की जाती है। टिड्डों को चर्बी में मिलाकर चॉकलेट बनाई जाती है। दीमक को तलकर मसालों में बघारा जाता है। मेंढक की टाँगें विदेशों में बड़ी स्वादिष्ट मान कर खाई जाती है। हाथी दाँत की बनी चीजें, मछली के तेल से बनी हुई दवाइयाँ, चरबी से बनी साबुन, शहद आदि हिंसा से बनी हुई वस्तुएँ हैं। भैंस की खाल में चाँदी को पीसकर वर्क तैयार की जाती है।

अशुभ कर्मों को क्षय करने का सरल तरीका है—सिद्धों का ध्यान, स्वाध्याय और सेवा।

समीक्षण ध्यान के कुछ सूत्र

1. शरीर मेरा नहीं है, मैं (आत्मा) भीतर हूँ, मैं सिद्ध बनूँगा।
2. रो मत, रो मत, दुःख में रो मत : सिद्ध बनेगा।
3. फूल मत भौतिक सुख में, सिद्ध बनेगा।
4. बड़ा मत समझो स्वयं को, बड़ा समझो बड़ों को।
5. दोष मत दो किसी को।
6. 'कोई लेनदार कोई देनदार।

परिवार नहीं होता अपना।'

7. शरीर बनेगा मिट्टी, मैं बनूँगा सिद्ध।

ऊपर लिखी हुई भावनाओं में और अनित्य आदि बारह भावनाओं में भी जिन भावनाओं का महीनों और वर्षों तक स्वाध्याय अर्थात्—चिंतन और जाप होने से उनमें साधक की अटूट श्रद्धा पैदा हो जावेगी और ये भावनाएँ साधक के आचरण में स्वतः उत्तर जावेगी। इन भावनाओं से पूर्णतया भावित होने वाला जीव अवश्य ही मोक्ष पाता है। जरूरत है एक-एक भावना को पाँच-पाँच, सात-सात बार जपने की।

अभय बनूंगा, सिद्ध बनूंगा

कषाय मुक्ति : दसवां भाग

चिंतन की कुछ भावनाएँ—

{1. अद्वेष, 2. अखेद, 3. अभय,
4. अराग, 5. अलोभ, 6. अमान }

1. अभय बनूंगा, सिद्ध बनूंगा
दोष किसी को कभी न दूंगा
क्रोध द्वेष से बचा रहूँगा।
2. दुःख-दर्द में दुःखी न होता
अशुभ कर्म समता से धोता।
3. मौत का मैं भय छोड़ूँगा
अभय बनूंगा, सिद्ध बनूंगा।
4. किया स्वयं का स्वयं ही पाता
परिवार भी कुछ काम न आता।
5. लोभ से यदि धन है मिलता
जग में कोई दीन न रहता।
6. मान-बड़ाई ईर्ष्या भावे
वह नर कैसे मोक्ष में जावे।
7. अभय बनूंगा, सिद्ध बनूंगा
णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं।

उपर्युक्त भावनाओं का जितना अधिक स्वाध्याय और चिंतन किया जाएगा उतना ही शीघ्र मनुष्य सिद्ध पद पाने का अधिकारी बनेगा और जितना कम स्वाध्याय किया जाएगा उतना ही देरी से वह मोक्ष जाएगा, इन भावनाओं में श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए चिंतन-मनन की सामग्री नीचे दी जा रही है—

मृत्यु भय से मुक्त हो जाता है वह तीर्थंकर महावीर की भाँति, सेठ सुदर्शन की भाँति, भक्त प्रह्लाद की भाँति द्रव्य और भावहिंसा के विचारों से दूर रहता हुआ अपनी आत्मा को नवीन कर्मों के बंध से मुक्त रखता है। सेठ सुदर्शन को अभया महारानी ने धमकी दी, वे सूली पर चढ़ाये गए, हरिणी वेश्या ने उनको घर में बंद कर दिया, व्यन्तरी ने कपड़ों में आग लगा दी लेकिन सेठ सुदर्शन मृत्यु भय से मुक्त थे, इसलिए उन्होंने मृत्यु की किसी भी धमकी से डरकर अशुभ कर्म का बंध नहीं किया।

यदि मनुष्य इसका बार-बार चिंतन-मनन करे तो मृत्यु का भय हट सकता है।

मनुष्य कई बार बीमार पड़ता है और हर बार मृत्यु भय से भयभीत होकर अशुभ कर्मों का बंध करता है किन्तु उसको यह याद रखना चाहिए कि रोग असातावेदनीय कर्मों से आता है और मृत्यु का इस कर्म से कोई संबंध नहीं है। चाहे वह कितनी ही बार बीमार पड़े उसे मृत्यु आ नहीं सकती। मृत्यु तभी आयेगी जबकि आयु-कर्म समाप्त होगा। इसलिए रोगों के आने पर मृत्यु के भय से अशुभ चिंतन नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार आयु-कर्म के समाप्त हुए बिना शत्रु भी हमें मार नहीं सकता, बल्कि कभी-कभी तो शत्रु द्वारा मारने का प्रयत्न हमें लाभ पहुँचा देता है। प्रद्युम्नकुमार को मारने की देवता ने चेष्टा की किन्तु उसको लाभ हुआ। भीम को मारने की दुर्योधन ने कोशिश की किन्तु भीम को लाभ ही हुआ। यदि आयु-कर्म के समाप्त हुए बिना कोई किसी को मार सकता तो बहुत से निर्दयी लोग भले आदमियों को जीने ही नहीं देते।

रोग, शत्रु, चोर, पशु, पक्षी, शरीर की कमजोरी आदि किसी के द्वारा आयु-कर्म समाप्त हुए बिना जीव मारा नहीं जा सकता। अतः ऐसे मौकों पर आर्तध्यान को छोड़कर शुभ ध्यान में लीन होना चाहिए। कुछ-कुछ ऐसा स्वाध्याय किया जा सकता है—“मौत का मैं भय छोड़ूँगा, अभय बनूँगा, सिद्ध बनूँगा” मनुष्य इसमें पूर्ण श्रद्धा रखकर स्वाध्याय व चित्त-मनन करे तो अभय बनना असम्भव नहीं है।

(4) अराग भावना—परिवार मोह से मुक्ति

मुक्ति प्राप्त करने में परिवार का मोह भी बहुत बाधक होता है, इस संबंध में इस पुस्तक में आगे चिंतन की विशेष सामग्री दी गई है। साधारणतया यह विचार और चिंतन परिवार मोह को घटा सकता है—

मान बढ़ाई ईर्ष्या भावे

वह नर मोक्ष में कैसे जावे।

दूसरा चिंतन इस प्रकार किया जा सकता है—

अहं बम है, विस्फोटक है, महाघातक है।

बचकर रहना, चोट लगेगी, उठ न सकोगे।।

जीवन की भौतिक बातें

कोई भी जीव किसी भी दूसरे जीव के कर्मों के फल में हेर-फेर नहीं कर सकता। उसे अपने कर्मों का दंड स्वयं को ही किसी-न-किसी रूप में भोगना ही पड़ता है। वह बचना चाहे तो भी उसकी बुद्धि उसके कर्मों के दंड से प्रायः बचने नहीं देती। क्योंकि—

बुद्धि वैसी ही बन जाती

जैसी कर्मों की गति है चाहती।

इस दृष्टि से मनुष्य के जीवन की प्रायः मोटी-मोटी भौतिक घटनाओं का नियंत्रण मनुष्य के कर्मों के हाथ में होता है। कुछ लोग तो बचने की कोशिश ही नहीं करते किन्तु कुछ बड़े-बड़े मनुष्य भी बहुत कम परिवर्तन कर पाते हैं। ये घटनाएँ इस प्रकार हैं—

1. जीव की गति—वह क्या बनेगा देव या पशु या मनुष्य।

2. परिवार—जिन लोगों के साथ उसे ये कर्म भोगने हैं, उन लोगों के परिवार में जन्म लेना पड़ता है और यदि उसे परिवार आगे बदलने पड़ेंगे तो उसका भी निर्णय कर्मानुसार निश्चित हो जाता है।

3. आयु—यह नया शरीर कितने समय तक टिकेगा।

4. कुछ छोटी-मोटी बातें—उसके साथी, उसके रहने के स्थान आदि-आदि।

5. विद्या—शिक्षा मिलेगी या कम मिलेगी या नहीं मिलेगी।

6. विवाह—किस परिवार में होगा या वह अविवाहित रहेगा या दीक्षा लेगा या नहीं लेगा आदि-आदि।

7. धंधा—व्यापारी बनेगा या कहीं नौकरी करेगा या मजदूरी करेगा और अपने कर्मों को किस तरह भोगेगा।

8. अमीरी-गरीबी का निर्णय—उसके उपादान में निमित्त से जैसा जितना धन आना है वैसा और उतना ही धन आवेगा और अशुभ कर्मों के योग से जो धन जाना है वह जायेगा।

10. स्थान और साथी-उसे पुद्गल स्पर्शना के अनुसार नियमित स्थानों और साथियों के साथ रहना होगा।

12. मृत्यु-मृत्यु कब, कैसे और कहाँ होगी। यह भी कर्मों के अनुसार नियत है।

यह याद रखने की बात है कि स्वाध्याय, सेवा, ध्यान, तप, दान, पुण्य और तीव्र चढ़ते हुए परिणामों में महान शक्ति है। इनकी साधना करने वाले मनुष्य को कभी-कभी इनसे उपार्जित होने वाले महान शुभ कर्मों का फल तुरन्त ही मिल जाता है और साधक के जीवन में भारी शुभ परिवर्तन हो सकता है। अतः कर्मों में बहुत ही शक्ति है इसलिए मनुष्य को हमेशा शुभ कर्म ही करने चाहिए और अशुभ किए हैं तो उसका पश्चात्ताप करना चाहिए।

मरुदेवी माता	मोह
मुनि गजसुकुमाल	दुःखानुभूति
जम्बूस्वामी	सुखानुभूति
वाहुबलीजी	अहंकार

2. मुनि गजसुकुमाल देह कष्ट में नहीं रोए, वे सिद्ध बने, उन्होंने किसी को दोष नहीं दिया, वे क्रोध से बचे रहे। क्रोध नहीं किया वे सिद्ध

बने, सब सिद्धों को नमस्कार है। मैं किसी को दोष नहीं दूंगा, क्रोध नहीं करूंगा, मैं दुःख में नहीं रोऊंगा, मैं सिद्ध बनूंगा।

3. जम्बू स्वामी भौतिक सुख में नहीं फूले। नहीं फूले वे सिद्ध बने। सब सिद्धों को नमस्कार है। मैं सुख में नहीं फूलूंगा, मैं सिद्ध बनूंगा।

4. बाहुबलीजी ने अहं छोड़ा, अहं छोड़ा वे सिद्ध बने, सब सिद्धों को नमस्कार है, मैं अहं छोड़ूंगा, सिद्ध बनूंगा।

5. अहं बम है, विस्फोटक है, महाघातक है। अहं छोड़ा वे सिद्ध बने, सब सिद्धों को नमस्कार है।

नोट—परिवार का मोह छोड़ना मुक्ति को देने वाला है, किन्तु जब तक परिवार में रहें तब तक परिवार की सम्यक् सेवा करके परिवार का कर्ज चुकाना मनुष्य का परम धर्म है।

उपर्युक्त भावनाओं में प्रत्येक भावना का दो-दो, तीन-तीन लाख बार पर्यटन अर्थात् स्वाध्याय और चिंतन-मनन करेगा वह किसी दिन सिद्ध पद प्राप्त करेगा।

मंगल भावना

वीर नहीं बचा सके दो संतों को उनके कर्मों के दंड से, कृष्ण नहीं बचा सके यादवों को, उनके कर्मों के दंड से। परिवार किसी को नहीं बचाता, उसके कर्मों के दंड से।

परिवार मोह से मुक्ति

मनुष्य के सिद्ध पद प्राप्ति में सबसे बाधक है परिवार मोह। इस मोह को ढीला करने का सर्वोत्तम उपाय है स्वाध्याय। अधिक स्वाध्याय करने से परिवार मोह का क्षय होता है।

एक राजा ने एक कैदी से पूछा—“तुम्हारे शरीर में इतना बल है कि तुमने लोह की भारी बेड़ियों को क्षण भर में ही तोड़ दिया तो फिर तुम कैद में इतने महीने कैसे रुके रहे ?” इस पर कैदी ने कहा—“महाराज ! मुझे आपके जेल की छड़ों ने नहीं बाँध रखा था। मैं परिवार मोह की बेड़ियों में बंधा हुआ था। मुझे भय था कि यदि मैं इन बेड़ियों को तोड़कर निकल जाऊंगा तो मेरा परिवार संकट में पड़ जाएगा। आप मेरी जगह उन्हें दंड देंगे। इसलिए जेल की छड़ों को तोड़कर नहीं भागा।”

महाज्ञानी गौतम स्वामी को महावीर स्वामी ने कहा—“हे गौतम ! तुमको मेरे ऊपर प्रशस्त रोग है। यही तुम्हारे केवलज्ञान प्राप्ति में बाधक है।

और अन्न न मिले, जहाँ उसे दूध, जल और पौष्टिक पदार्थ आदि ले हुए रहे मरने का भय भी पूरे मात्रा में नहीं मिले। अदिनाथ मरदान बाहुलीले एक-एक वर्ष निराहार रहे। आज के मनुष्य भी दो-दो, तीन-तीन वर्ष तक एक-एक नहीने में पाँच-पाँच पंचौले का तप करते हुए भी जीवित और स्वस्थ रह जाते हैं।

यदि मनुष्य को परिवार का सहयोग नहीं मिले, सेवा करने वाला नहीं मिले, जहाँ उसे अकेला हो रहना पड़े तो भी शरीर का कुछ नहीं बिगड़ता। शत्रु द्वारा की हुई उसे नारे जाने की योजना भी सफल नहीं होती जब तक कि मनुष्य का आयु-कर्म समाप्त नहीं हो जाता। पाण्डव, भीम, प्रद्युम्नकुमार भक्त प्रह्लाद, सेठ सुदर्शन आदि को नारने की योजनाएँ सफल नहीं हुई क्योंकि उनका आयु-कर्म समाप्त नहीं हुआ था। परिवार का षट्चक्र, धन की हानि, नान की हानि और मनुष्य को मिलने वाली अनेक असफलताएँ मनुष्य को नहीं मार सकती जब तक आयु-कर्म समाप्त नहीं हो जाता।

मनुष्य को मौत के भय से बचने के लिए चिंतन-मनन करना चाहिए जिससे अंतिम समय में वह सद्भावनाओं के साथ मरता हुआ दुर्गति में नहीं जावे और सम्भव हो तो भावना पूर्वक संथारा भी ले सके।

चिंतन में प्रथम स्थान कर्म सिद्धांत को देना चाहिए, असाताषेदनीय और अन्तरायकर्म दोनों ही आयु-कर्म के समाप्त हुए बिना मौत को नहीं ला सकते, मनुष्य को अपने पहाड़ के समान दुःख को भी रेत के समान तुच्छ मानना चाहिए। अभय भावना की साधन से दुर्भावनाओं और हिंसा आदि पापों से बचा जा सकता है, इससे शरीर का मोह छूटता है और सभी चिंताएं दूर होती हैं।

“जवाहर विचार सार” में आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. ने तीन बातें बताई हैं—प्रथम परमात्मा का ध्यान, दूसरा अपने मन में दुःखियों और जीव मात्र के लिए दया भावना रखना और तीसरा यथाशक्ति प्राणीमात्र की सम्यक् सेवा में अपने शरीर को लीन रखना चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि चिंता और अनुकम्पा में जमीन आसमान का अन्तर है। जहाँ दूसरे मनुष्य पर ममता है उसके लिए चिंता करना चिंता और मोह है किन्तु जहाँ पर दूसरे जीव को आत्मा केवल आत्मा ही समझा जाता है उसके लिए चिंता करना चिंता और मोह नहीं बल्कि अनुकम्पा है, चिंता ज्वाला है, अनुकम्पा शीतल जल है, चिंता जहर है, अनुकम्पा अमृत है जो मनुष्य को अमर, आनन्दघन और अभय बनाता है और मोक्ष पहुँचाता है।

हम क्या करें

मोक्षार्थी को यह समझ लेना चाहिए कि विचारों और भावनाओं में महान शक्ति है और शुभ विचार करके हम आसानी से मोक्ष पहुँच सकते हैं। मनुष्य जितनी बार कोई विचार करता है उतनी ही बार वह शुभ या अशुभ विचारों का बंध या क्षय कर लेता है।

एक मनुष्य बीस दिन तक दिन में पाँच-पाँच बार किसी मनुष्य की हत्या करने का विचार करता है तो वह उस मनुष्य को यदि नहीं मारे तो भी एक सौ बार हत्या करने के विचारों से आने वाले अशुभ कर्मों का बंध कर लेता है। यदि एक मनुष्य किसी दूसरे दुःखी मनुष्य को सात्वना देने या धैर्य बंधाने या मदद देने का विचार करता है तो यदि वह उसे मदद नहीं दे सके तो भी इस विचार से आने वाले शुभ कर्मों का उपार्जन करता है और यदि उसकी भावना अति तीव्र हो तो वह क्षणभर में अनेक वर्षों के अशुभ कर्मों का क्षय कर लेता है और केवलज्ञान भी प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार अनेक मकान बनाने के विचारों का या हिंसक कारखानों का या महाआरंभ या पाप के कार्यों का विचार करता है तो वह कुछ भी नहीं करता हुआ भी तन्दुल मत्स्य की तरह या कालसौरिक कसाई की तरह महापाप के अशुभ कर्मों का बंध कर लेता है। प्रसन्नचंद्र मुनि ने क्षणभर में सातवीं नरक में ले जाने वाले कर्मों का उपार्जन किया और विचारधारा बदलने से केवल पश्चात्ताप द्वारा उन सभी कर्मों को क्षणभर में नष्ट करके केवलज्ञान प्राप्त किया।

आपको जितना अधिक-से-अधिक समय मिले उस समय में इस भावना का स्वाध्याय अर्थात् पर्यटन और चिंतन करें—“सिद्ध भगवान हैं, वे अशरीरी हैं, वे अतिसूक्ष्म हैं, वे दिखाई नहीं देते, वे ज्ञानस्वरूप हैं, वे ज्ञान के भण्डार हैं, वे सिद्ध लोक में, सिद्ध दशा में, अटल अवगाहना प्राप्त करके, आनन्दघन बनकर विराजे हुए हैं। उनको, उन सब सिद्धों को नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है। णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं।

इस विचार का या भावना का हमेशा अधिकाधिक चिंतन करने वाला अपने पापों का क्षय करता है और वह अंत समय में यदि इसी ध्यान में जमा रहकर मरण प्राप्त करता है तो वह इसी जन्म में या भविष्य में कभी-न-कभी अवश्य ही मोक्ष प्राप्त कर सकेगा।

मोक्ष मार्ग का पथिक

कषाय मुक्ति : ग्यारहवां भाग

1. कषाय मुक्ति

दया भावना मन में रखता ।
सेवा करता वह सिद्ध बनता ॥
पश्चात्ताप से पाप है कटता ।
सिद्ध ध्यान से सिद्ध पद मिलता ॥1॥
चोरी हत्या महापापों को ।
प्रहारी ने पाँच मास में ॥
पश्चात्ताप अरु प्रभु भजन से ।
काट-काट कर सिद्ध पद पाया ॥2॥
क्रोधी मरकर सर्प है बनता ।
अभिमानी मुर्गा है बनता ॥
माया कपट से औरत बनता ।
लोभी मृगा लोढ़ा बनता ॥3॥
खोट मिलाता, चोरी करता ।
झूठ बोलता, धोखा देता ॥
साहू बन धन लूट मचाता ।
अति लोभी दुर्गति में जाता ॥4॥
आत्म ध्यान से मोह है हटता ।
हिंसा पाप लगने से बचता ॥
दान जो देता वह सुख पाता ।
विनयवान भगवान है बनता ॥5॥
माता-पिता की सेवा करता ।
देवलोक में देव वह बनता ॥

(ग) समता विभूति आचार्यश्री नानालालजी म. सा. सिद्धों के अरूपी ध्यान पर बहुत जोर देते हैं। इस ध्यान से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। जैसा कि नमस्कार मंत्र में बताया गया है। दृढ़ प्रहारी तो प्रभु का भजन करने से चार मोटी हत्याओं के पाप से न्यारा हो गया था। जो जैसा विचार करता है, वह वैसा ही बन जाता है। फिर सिद्धों का ध्यान करने वाला यदि सिद्ध बन जावे तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ?

आचार्य भगवन् ने समीक्षण ध्यान के अन्दर “मैं सिद्ध बनूंगा” इस भावना पर बहुत जोर दिया है। इसका स्वाध्याय इस प्रकार किया जा सकता है—“मैं भीतर हूँ, मैं भीतर हूँ, मैं सिद्ध बनूंगा। सिद्ध लोक में, सिद्ध दशा में, अटल अवगाहना प्राप्त करूंगा। आनन्दघन और अभय बनूंगा।

‘सब सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ और मैं सिद्ध बनूंगा।’

सिद्धों के आठ गुणों का, पन्द्रह भेदों का, अटल अवगाहना का, अमूर्त भाव आदि का चिंतन करते हुए चित्त को एकाग्र करना चाहिए। इन भावनाओं का हजारों, लाखों बार जाप और चिंतन-मनन करना चाहिए। यह सामायिक या बिना सामायिक भी, सोते हुए या बैठे हुए, कहीं भी, कभी भी किया जा सकता है।

2. (क) सिद्धों के ध्यान के अलावा आत्म भावना भी केवलज्ञान प्राप्ति की साधना है। वह इस प्रकार भायी जा सकती है—

आत्मा हूँ मैं, देह नहीं हूँ
मैं अमूर्त हूँ, चेतन हूँ।
मैं अवद्य हूँ, मैं अदाह्य हूँ
अजर, अमर हूँ, शाश्वत हूँ॥
ज्योतिपुंज हूँ, ज्ञान रूप हूँ
मैं चेतन हूँ, जीवन हूँ।
निराकार हूँ, निर्विकार हूँ
आत्मा हूँ मैं चेतन हूँ॥

(ख) शरीर अलग है, मैं आत्मा अलग हूँ। शरीर नाशवान है, यह मेरा नहीं है। मैं आत्मा हूँ, मैं सिद्ध बनूंगा। मैं ही मेरा हूँ, मुझ आत्मा के सिवाय मुझ आत्मा का और कुछ भी नहीं है। शरीर, परिवार, धन ये मेरे नहीं हैं।

जीव को नाच नचाता है उस समय यह परिवार को शत्रु बनाकर मनुष्य की हत्या तक करवा देता है।

(घ) परिवार मोह से एक भयंकर हानि हो सकती है। परिवार मोह में मरने वाला जीव महेशदत्त के माता और पिता की तरह कुतिया एवं पाडा (भैंस का बछड़ा) बन सकते हैं। वे बिल्ली, चूहा, कौआ आदि तिर्यच बनकर वहीं चक्कर लगाते हैं किन्तु परिवार मोह को बिलकुल छोड़ देने वाले मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। अतः 'मोह छोड़ूंगा परिवार का' इस भावना का लाखों करोड़ों बार जप और चिंतन-मनन करना प्रत्येक प्राणी के लिए लाभदायक है।

(ङ) परिवार मोह छोड़ने का अर्थ यह नहीं है कि परिवार को छोड़ दिया जाय। जब तक मनुष्य परिवार में रहता है तब तक उसे परिवार की सरल और निःस्वार्थ भाव से सम्यक् सेवा करनी चाहिए।

(च) 'मैं सिद्ध बनूंगा' इस भावना को जपने वाला और इस संकल्प को दृढ़ बनाने वाला कभी-न-कभी अवश्य ही सिद्ध बनता है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जो जैसा विचार करता है वह वैसा ही बन जाता है। 'सब सिद्ध बनें' इस भावना का जाप करने वाला अपनी मंगल भावना से स्वयं मंगल रूप बन जाता है। ऐसा साधक दुर्भावनाओं से, दूसरों के प्रति अनिष्ट चिंतन से, द्वेष और क्रोध भाव से और अनेक प्रकार के अवगुणों से बच जाता है और वीतराग दशा प्राप्त करता है।

4. समता आचरण

परिवार मोह छोड़ूंगा सिद्ध बनूंगा	रो मत दुःख दर्द में	फूल मत सुख व मनोरंजन में	अहं छोड़ो
--	------------------------	--------------------------------	-----------

(क) 'परिवार का मोह छोड़ूंगा' महेशदत्त की माता परिवार मोह के कारण कुतिया बनी व पिता भैंसा बने। नन्दन मणिहार मेंढक बना। एक राजा अपनी रानियों के मोह के कारण मरकर उन रानियों के मल-मूत्र के कुण्ड में लाल रंग का कीड़ा बना। चक्रवर्ती की पटरानी मोह के कारण पति वियोग में छः महीने विलाप करती हुई छटे नरक में गई। "मैं परिवार छोड़ूंगा व सिद्ध बनूंगा।" परिवार मोह छोड़ने से मरुदेवी माता सिद्ध बनी।

(ड) 'बाहुबलीजी ने अहं छोड़ा, वे सिद्ध बने।' अहं छोड़ने के लिए "बड़ा मत समझो स्वयं को—तप में, ज्ञान में, धन में, दान में और धार्मिक बातों में।" अहंकार से बहुत बड़े-बड़े लोगों और महात्माओं का पतन हुआ है। इससे शुभ कर्मों का फल मिलना रुक जाता है। अहं छूटने से बाहुबलीजी को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। 'अहं बम है, यह महा विस्फोटक है।'

(च) इन चारों भावनाओं का कोटिश: चिंतन करने से अवश्य लाभ होगा। यह भौतिक सुख मीठे जहर के समान है, किम्पाक फल के समान है, जो देखने और खाने में तो अच्छा लगता है किन्तु खाने वाले की मृत्यु का कारण बनता है।

5. क्रिया और भावना

मनुष्य जो भी करता है उसके मूल में या उसे कराने वाली जो भावना होती है, उसी शुभ या अशुभ भावना के अनुसार उसे शुभ या अशुभ फल मिलता है। क्योंकि बिना विचार या भावना के कोई काम नहीं होता। अतः अशुभ विचार से किसी भी क्रिया का फल, दान या सेवा का फल भी अशुभ हो जाता है। अतः साधु, परिवार या शत्रु की सेवा करने वाला या किसी को कुछ देने वाला अपनी भावना के अनुसार शुभ या अशुभ कर्म बांधता है। अतः परिवार की भावना में भी मोह छोड़कर परिवार वालों को केवल आत्मा समझकर अनुकम्पा भाव से सेवा करने वाला ही कर्म निर्जरा और पुण्य का अधिकारी बन सकता है। जो व्यक्ति दुर्भावना से, अपने मन में दुःख करता हुआ जो भी कार्य करता है वह अशुभ कर्म उपार्जित करता है। अतः प्रत्येक कार्य अनुकम्पा भाव से करना चाहिए।

6. क्रिया का फल

(क) भारतवर्ष के बौद्ध भिक्षु धर्मबोधि ने चीन देश के सम्राट बुश से कहा—“राजन ! तुम कहते हो कि मैंने हजारों धार्मिक स्थान बनवाये। धर्म का खूब प्रचार किया, ग्रंथ लिखवाये। धर्म पर खूब पैसा खर्च किया, लेकिन तुमने यह सब काम प्रसिद्धि की भूख, कीर्ति का लोभ होने के कारण किये। इससे तुम्हारा नाम फैला। तुम्हारे अहंकार की तुष्टि हुई। इससे ज्यादा तुम्हें कुछ मिलना नहीं है। अहंकार से खर्च किए हुए धन से मोक्ष नहीं मिलता।

(ख) साधु सुपात्र होता है फिर भी भगवान महावीर को शुद्ध भावना के बिना दिए हुए दान से पूर्ण सेठ को महापुण्य की प्राप्ति नहीं हुई तथा

किया स्वयं का स्वयं ही पाता ।
पर का दिया कुछ काम न आता ।।

8. दिया हुआ व्यर्थ नहीं जाता

जब मनुष्य अपने परिवार, पड़ोसी, शत्रु, भिखारी या किसी संस्था को कुछ सहयोग देता है तो उस दाता को अपनी भावना के अनुसार सुख या दुःख के रूप में उस दिए हुए (दान) का बदला अवश्य मिलता है। वह बदला, यदि जिसे दिया गया है, उससे नहीं मिले तो किसी अन्य निमित्त से मिल जाता है और कभी-कभी प्रकृति से या उसके अपने शुभ कर्मों की सहायता से अपने-आप ही मिल जाता है। प्रह्लाद, प्रद्युम्नकुमार, भीम, पाण्डव आदि को उनके किए हुए पुण्य के प्रभाव से सुख ही मिला तथा उनकी रक्षा हुई। सेठ सुदर्शन बिना किसी रक्षक की सहायता के अर्जुनमाली के मुद्गर से बच गया। दूसरों का भला करने वाला मनुष्य अपने शुभ कर्मों के प्रभाव से करोड़पति के घर जन्म लेकर या वसीयत से या गोद लेने से धनवान बन जाता है। शुभ कर्मों से मनुष्य को स्वस्थ शरीर, सहायक मित्र, ऊँचा पद व सुखी जीवन आदि भौतिक व आध्यात्मिक ऐश्वर्य मिलता है। दूसरों को दुःख देने वाले तथा अशुभ कर्म करने वाले रावण को, बाली को और कौरवों को दुःख ही मिला। अभय रानी, हिटलर आदि ने आत्महत्या कर ली। पापी मनुष्य अपने अशुभ कर्मों के कारण रोगी और विकलांग शरीर पाता है। वह जल में डूब सकता है, अग्नि में जल सकता है। वह हमेशा शत्रुओं से घिरा रहता है तथा दुःख ही पाता है। इसलिए कहा गया है कि—“दिया हुआ व्यर्थ नहीं जाता।” उसका बदला सुख या दुःख के रूप में अवश्य मिलता है।

किसी से लिया हुआ भी मुफ्त में नहीं मिलता है, उसका बदला अवश्य चुकाना पड़ता है। इस बदले में निमित्त की प्रधानता नहीं रहती। निमित्त के बिना भी उपादान की किस्मत में जो लिखा होता है, वह उसे अवश्य मिलता है। जैसे कबूतर आदि पक्षियों को चुगने के लिए अनाज डाला जाता है और घर से निकाली हुई गायों को खाने के लिए घास डाला जाता है। उसका फल भी हमें अन्य रूप में मिलता है। प्रायः दूसरे निमित्तों से और दूसरे ही रूप में तथा कभी-कभी इसी जन्म में और कभी भविष्य के जन्मों में मिलता है। वे फल पाने की दृष्टि से उपादान ही बनते हैं। इसमें निमित्तों का विशेष महत्त्व नहीं रहता। उपादान ही प्रधान होता है।

स्वास्थ्य चर्चा

स्वस्थ रहने के लिए मनुष्य को इन बातों का अवश्य ध्यान रखना चाहिए—

भोजन का प्रत्येक ग्रास (कवा) छोटा हो, उसको गिन-गिन कर बत्तीस बार चबा करके खाना चाहिए। सूर्य का प्रकाश रहते हुए (छिपने से पहले) किया हुआ भोजन लाभदायक और स्वास्थ्यप्रद होता है। अधिक चटपटा, खट्टा भोजन स्वास्थ्य खराब करता है। तली हुई चीजें जैसे—पूड़ी, कचौरी, पकौड़ी, मिठाइयाँ आदि पेट को खराब करती हैं। जिनको दूध से गैस बनती हो वह थोड़ा-थोड़ा करके तीन-चार बार में दूध पीवे। जितनी भूख हो उससे ¼ (एक चौथाई) भोजन कम खायें। कभी-कभी उपवास या ऊनोदरी तप करें। यह स्वास्थ्य के लिए जरूरी है। दवाइयाँ कम से कम लेनी चाहिए।

जीवनोपयोगी चर्चा

1. जे न मित्र दुःख होहिं दुःखारी।

तिन्हीं विलोकित पातक भारी।।

जो अपने मित्रों अर्थात् परिवार के लोगों सम्बन्धियों, पड़ोसियों आदि के दुःख में दुःखी नहीं होता अर्थात् उन पर दया नहीं करता और उनकी तन, मन, धन से सहायता नहीं करता उस पुरुष को कभी सिद्ध पद प्राप्त नहीं हो सकता। वही मनुष्य परमात्मा बनने का अधिकारी है जो अपने शत्रु से भी बदला लेने की बात सोचना तो दूर रहा, किन्तु अपने दया भावना से, निःस्वार्थ त्याग से और सेवा से उसका भला करने की बात सोचता है और करता है।

2. बुरा काम करते हुए यदि धन आता है तो उसे उस बुरे कर्म का फल सोचना भूल है। वह किसी पहले हुए कर्म का ही फल है। इस वर्तमान कर्म का बुरा फल आगे कभी इसके उदय में आने पर ही होगा। इसलिए हमेशा अच्छा कर्म ही करना चाहिए।

3. आलसी मनुष्य को कोई अपने पास नहीं रखना चाहता। गरीबी हमेशा उसको घेरे रहती है। प्रथम मीठी बोली, दूसरा मिलनसार स्वभाव, तीसरा सत्य भाषण, चौथा ईमानदार तथा पाँचवाँ परिश्रम—ये पाँच गुण होने से मनुष्य ऊँचा उठता है।

4. लोभी को कुछ धन देकर, क्रोधी को हाथ जोड़कर, मूर्ख को

दूसरी ओर स्वर्गीय कवि श्री अमरचंदजी म. सा. ने जैनत्व की झाँकी नामक पुस्तक में समवाय के पाठ में साफ लिखा है कि चाहे कुछ भी करो, होता वही है जो नियति को स्वीकार है। श्री कानजी ऋषि ने 'क्रमबद्ध पर्याय' नामक पुस्तक में स्पष्ट लिखा है कि अगले जन्म स्थान का रिजर्वेशन (आरक्षण) हुए बिना मरना भी मनुष्य के हाथ में नहीं होता। भव स्थिति पके बिना मोक्ष की प्राप्ति भी नहीं होती। भव्य-अभव्य द्रव्य नहीं हो सकता और अभव्य भव्य नहीं हो सकता। प्रकृति की बहुत-सी बातें सूर्य, चन्द्र आदि नक्षत्रों की गति की तरह नियत है। वृद्धालोयणा में लिखा है कि पुद्गल स्पर्शना टलती नहीं है।

एक बहेलिये (चिड़ीमार) ने एक पक्षी को पकड़ा और एक केवलज्ञानी को झूठा साबित करने के लिए पूछा कि मैं इसे मारूंगा या छोड़ूंगा। तब केवलज्ञानी ने जवाब दिया कि तुम इसे मार भी सकते हो और छोड़ भी सकते हो। इन सब बातों से यही प्रकट होता है कि कुछ बातें नियत और कुछ अनियत हैं। हम सर्वज्ञ नहीं हैं इसलिए नियतिवाद और अनियतिवाद के झगड़े को छोड़कर कषाय आदि को जीतने के लिए निश्चय दृष्टि में विश्वास रखते हुए व्यवहारवाद का पालन करना चाहिए। इससे हमें दया भावना आदि की वृद्धि में सहायता मिलती है और हम कर्म काटकर मोक्ष मार्ग पर चल सकते हैं।

पाप का पश्चात्ताप

किसी से झूठ बोलकर, धोखा देकर, चोरी करके या दबाव आदि से धन या कोई चीज लेना बहुत बड़ा पाप है। इस प्रकार लिया हुआ धन या चीज प्रायः अपने साथ धोखेबाज के घर या घर से अधिक धन किसी न किसी रूप में लेकर निकल जाता है। धोखा देने वाले को धोखे से ली हुई चीज या उसकी कीमत असली मालिक को पश्चात्ताप करते हुए लौटा देनी चाहिए। यदि लौटाई नहीं जा सके तो उसके फल रूप में दृढ़ प्रहारी और अर्जुनमाली की तरह पश्चात्ताप करते रहना चाहिए जिससे उस किए हुए पाप का फल हल्का हो सके या नष्ट भी हो सकता है।

सत्-संकल्प

सिद्ध बनूंगा, सिद्ध बनूंगा, ममता अरु इच्छा छोड़ूंगा।

समता रखकर, कर्म काटकर, सिद्धों का पद प्राप्त करूंगा।।

पश्चात्ताप से, सिद्ध ध्यान से, सब पापों का नाश करूंगा।

ज्ञेय, हेय, उपादेय

1. कर्मों के सामने इच्छा नहीं चलती।
2. पुद्गल स्पर्शना अर्थात् होनहार नहीं टलती। किसी को दोष मत दो, क्रोध मत करो।
3. लेन-देन बाकी नहीं रहता।
तब परिवार अलग हो जाता।
4. दया भावना—निस्वार्थ भाव से दूसरे का भला करने का विचार—दया भावना है। भला करना सेवा है, धर्म है और यह मोक्ष का मार्ग है।
5. लोभ और लूट—(क) धनवान बनने की इच्छा लोभ है। (ख) वेतन पाते हुए भी अपने काम के लिए जनता से और अधिक धन लेना भी लूट है। (ग) साहूकार कहलाते हुए चीजों में मिलावट, चोरी, झूठ, कपट द्वारा या बिलकुल मुफ्त में लोगों का धन छीनना या शोषण करना और अपनी चीज की उचित से बहुत अधिक कीमत लेना लूट है।
6. मुफ्त में न तो कुछ आता है और न कुछ पाता है। पति-पत्नी को भी अपना-अपना कर्ज, कर्म तराजू पर तोलकर किसी-न-किसी जन्म में चुकाना पड़ता है। मुफ्त में लेना व खाना छोड़ो, देना व खिलाना तथा दया करना सीखो।
7. पश्चात्ताप और प्रभु भजन से पाप नष्ट होता है और मोक्ष मिलता है।
8. दूसरों की आलोचना व निन्दा करना छोड़ो। कम बोलो, मौन रखो।
9. अहं से धर्म का फल शिथिल पड़ जाता है तथा पाप का फल निकाचित और भयंकर हो जाता है।
10. "माता-पिता की सेवा करता।
देवलोक में देव वह बनता।।"



नहीं है।" चौथा सूत्र है—“मैं किसी की अशुभ आलोचना, निंदा या विकथा नहीं करूंगा।”

(ग) इन ऊपर वाले सूत्रों से दुर्भावना और अशुभ कर्म आने रुक जायेंगे और साधक मुफ्त में ही तन्दुल मत्स्य या कालसौरिक कसाई बनने से बच जाएगा। यह स्व. गणेशाचार्य जी की अद्वेष भावना है।

4. (क) कषाय को छोड़ने के लिए कुछ उपाय नीचे दिये हैं—प्रथम उपाय है कि मनुष्य को कषाय से प्रायः पशु का जन्म मिलता है। उसे यह जाप करना चाहिए—“क्रोधी मरकर सर्प है बनता।” दूसरा सूत्र है—“अभिमानी मृगा है बनता।” तीसरा सूत्र है—“माया कपट से मादा (औरत) है बनता।” मल्लिनाथ भगवान ने तीर्थंकर होते हुए भी मादा अर्थात् औरत रूप में जन्म लिया था। चौथा सूत्र है—“लोभी मृगा लोढ़ा है बनता।” मृगा लोढ़ा के हाथ पैर नहीं थे, उसका जीवन बहुत दुःखी था।

(ख) क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार प्रकार के अशुभ कामों से दुःख पाने वाले लोगों के जीवन की कथा संतों व साध्वियों से पूछिये और कषाय मुक्ति की भाग एक से ग्यारह तक की पुस्तकों में पढ़िये।

(ग) अपने अड़ोस-पड़ोस में रहने वालों को कषाय से होने वाले दुःखों से अवगत कराइये।

5. (क) मोह छोड़ने के लिए और अराग भावना को मजबूत बनाने के लिए यह चिंतन-मनन करिए। प्रथम शरीर मोह को छोड़ने के लिए विचार करिये कि मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदायी, मुनि अर्जुनमाली, मुनि खन्दक जिनकी चमड़ी उतारी गई और स्कन्धाचार्य के 500 शिष्य जिनको पालक द्वारा घाणी में पैला गया उन्होंने शरीर का मोह छोड़ा और वे सिद्ध बने।

(ख) अराग भावना को मजबूत बनाने और वीतरागी बनने के लिए परिवार मोह को छोड़ना जरूरी है। यह याद रखिए कि केवल परिवार को छोड़ने से या अपने शिष्यों को छोड़ने से मनुष्य वीतरागी नहीं बनता। छोड़ना है केवल मोह को और जब तक परिवार में रहें तब तक परिवार को श्री जवाहराचार्य के विचारों के अनुसार परिवार को भी तिराने वाली जहाज समझकर धारिणी रानी की तरह इनकी अनुकम्पा भाव से सेवा करें। कूर्म पुत्र केवली की तरह अनुकम्पा भाव से, दया भाव से परिवार की पूरी सेवा

तप करूंगा या अमुक वस्तु खाना छोड़ूंगा। मैंने भूल से या जान बूझकर अमुक व्यक्ति से इतने रुपये या सामान ठगे, मैं महापापी हूँ, हो सकेगा तो उसके रुपये लौटाऊंगा। मैंने अमुक व्यक्ति की नौकरी छोड़ायी, हो सकेगा तो मैं उसकी सहायता करूंगा। अति लोभी को दुर्गति में जाकर भारी दंड सहना पड़ता है। मैंने रिश्वत ली। मैंने मुफ्त में अमुक व्यक्ति का धन खाया, पाप किया। दूसरे का धन मुफ्त में या धोखा देकर या बहुत अधिक ब्याज लेकर मैंने एक प्रकार से दूसरों का खून चूसा। मैं इन सबका पश्चात्ताप करूंगा और करता हूँ।

10. कषाय मुक्ति ग्यारहवां भाग में 'ज्ञेय, हेय, उपादेय' इस शीर्षक में दस नियम दिये हैं उन्हें हमेशा पढ़िये।

11. दूसरों पर व्यवहार में दिखते हुए अन्याय को रोकने के लिए यथाशक्ति, यथा मर्यादा, अनुकम्पा भाव से शुभ प्रयास करना हमारा परम और पवित्र धर्म है।

12. धन के आठ नियम—1. उपादान रूप में आने वाला धन अवश्य आता है। 2. अशुभ कर्म से जाने वाला धन रुक नहीं सकता। 3. धन के बिना भी शुभ कर्मों के उदय से सुख मिलता है। 4. धन होते हुए भी सभी अशुभ कर्मों से दुःख मिलता है। 5. धन होते हुए भी योग नहीं हो तो काम नहीं बनता। 6. धन नहीं होते हुए भी होने वाले काम के लिए कहीं से धन आता है तथा वह काम अवश्य बनता है। 7. धन दान-पुण्य से ही आता है। 8. धन का लोभी सर्प बनकर उसकी रखवाली करता है।

13. कभी-कभी कर्ज चुकाने के लिए पशु का जन्म लेना पड़ता है।

14. आम के पेड़ व दान का शुभ फल बहुत समय तक मिलता है।

15. पति-पत्नी को भी अपने लेन-देन का हिसाब किसी-न-किसी रूप में चुकाना पड़ता है।

सिद्ध बनूंगा, सिद्ध बनूंगा।

ममता अरु इच्छा छोड़ूंगा।।

समता रखकर कर्म काट कर।

सिद्धों का पद प्राप्त करूंगा।

2. दूसरा सूत्र इस प्रकार है—जीव पर अनेक दूसरे जीवों का अनेक प्रकार का ज्ञात व अज्ञात ऋण चढ़ा हुआ है। उसे निःस्वार्थ भाव से दया, दान और सम्यक् सेवा द्वारा उतारो। मुनि गजसुकुमाल ने निन्यानवे करोड़ जन्मों के बाद अपना आग से जलाने वाला पाप समता-भाव से काटकर मोक्ष प्राप्त किया था। वैदिक संस्कृति में भी बताया गया है कि जीव माता-पिता आदि का ऋणी बने बिना जन्म नहीं ले सकता। 'ऋणम् वर्जं जाय मान।'।

3. अपने सभी पापों को बार-बार याद करके पश्चात्ताप द्वारा तथा प्रभु भजन द्वारा काट लो।

4. सिद्धों का ध्यान करो। सिद्धों के ध्यान से दृढ़ प्रहारी ने उसी एक जन्म में सब हत्या के महापापों को भी काटकर प्रभु भजन से मोक्ष प्राप्त किया था।

5. 'सिद्ध बनूंगा, सिद्ध बनूंगा' इस संकल्प को जाप द्वारा मजबूत बनाओ। इस संकल्प से सिद्ध पद प्राप्त होता है।

चिंतन-मनन की चार बातें

1. परिवार नहीं किन्तु पश्चात्ताप कर्म दंड से बचा सकता है। दृढ़ प्रहारी ने गाय, ब्राह्मण, गर्भवती स्त्री और बालक की हत्या का पाप पश्चात्ताप और प्रभु भजन से नष्ट किया और मोक्ष गए। अर्जुनमाली ने 1141 मनुष्यों की हत्या का पाप पश्चात्ताप और समता से काटा और मोक्ष गए।

2. (क) परिवार, पिता, पुत्र आदि कोई भी कुछ भी मुफ्त में नहीं देता। उसका बदला पहले या बाद में, किसी जन्म में तथा किसी-न-किसी रूप में चुकाना ही पड़ता है।

(ख) दूसरों का धन मुफ्त में खाने वालों को तथा चोरी या उचित से अधिक कीमत लेकर लाया हुआ धन मनुष्य को बरबाद कर देता है या उस मनुष्य को मृगा लोढ़ा अर्थात् बिना हाथ पैर के शरीर वाला मनुष्य बनाता है। मुफ्त में खाना छोड़ो। दया भाव से दूसरों का उपकार करो।

3. परिवार मोह में मरने वाली महेशदत्त की माता कुतिया बनी, उसका पिता भैंसा बना। मोह में मरकर मनुष्य पशु भी बनता है।

4. परिवार मोह छोड़ने वाली मरुदेवी माता सिद्ध बनी।

मुफ्त में कुछ नहीं मिलता

संसार में किसी भी जीव को किसी भी जीव से यहाँ तक कि परिवार में भी एक दूसरे को मुफ्त में कुछ नहीं मिलता। उनके लेन-देन का पूरा हिसाब कर्मों के नियमों के अनुसार कर्मों के अरूपी बही खातों में कर्मों के स्वयं अरूपी लेखनी के द्वारा अंकित हो जाता है और वह लेना-देना उसी रूप में या बदले हुए रूप में कर्मों के माप-तोल के अनुसार चुकाना पड़ता है। इसमें छूट नहीं होती किन्तु वह कर्म पश्चात्ताप द्वारा नष्ट किया जा सकता है।

कोई मनुष्य पहले, कोई बाद में दाता और पात्र अर्थात् निमित्त और उपादान या साहुकार और आसामी (कर्जदार) बनता रहता है। मुफ्त में न कुछ आता है और न कुछ जाता है।

समझदार मनुष्य मोक्ष की इच्छा रखने वाला धन आने पर फूलता नहीं और खो जाने पर रोता नहीं है। वह जानता है कि जितना उपादान में लिखा है उतना तो ईमानदारी से भी मिल जाएगा। इसलिए मुक्त में खाना छोड़ो। मुक्त में जरूरतमंदों को खिलाना सीखो। दान देना सीखो। चोरी, ठगी, लेन-देन आदि का बदला पहले या बाद में लेना-देना पड़ता है। अतः धन प्राप्त करने के लोभ से बचना चाहिए तथा दान, सेवा, त्याग आदि से अपना अज्ञात कर्जा चुकाना चाहिए। यही धर्म और मोक्ष का मार्ग है।

मोक्ष मार्ग में रुकावटें

1. जो मनुष्य अपनी भूल को स्वीकार नहीं करता और दो-चार समझदार लोगों से पूछकर उसमें सुधार नहीं करता वह मोक्ष नहीं जा पाता।

2. जो मनुष्य धन के लोभ में दूसरों को अनीति से लूटता है वह मोक्ष नहीं जा पाता।

3. जो मनुष्य अपने धन, बल, बुद्धि और मान का दिखावा करता है उसकी बुद्धि का दिवाला निकल जाता है और उसका अहंकार उसे मोक्ष नहीं पहुँचने देता।

मोक्ष का दरवाजा

पश्चात्ताप से पाप कटता है तथा मोक्ष का दरवाजा खुलता है। पश्चात्ताप इस प्रकार किया जा सकता है—“अरे भाई मोहन ! मुझे क्षमा करो, मैंने बहुत पाप किए हैं। मैंने तुम्हें ठगा है, धोखा दिया है। उसके लिए मुझे धिक्कार है। मुझे माफ करो।

बहुत दिनों तक बार-बार इस प्रकार पश्चात्ताप करने से पाप नष्ट होते हैं। दृढ़ प्रहारी, अर्जुनमाली आदि ने इसी प्रकार पश्चात्ताप करते हुए अपने पूर्वकृत पापों को नष्ट किया और मोक्ष पद को प्राप्त किया।

किसी चिंतन की पुनरावृत्ति होना भूल नहीं है यह स्वाध्याय तप का अंग है।

भगवान महावीर के तीन सिद्धांत

1. महाहिंसा से बचो और अहिंसक बनो। मकान बनाने, जमीन खुदवाने, चुने आदि के भट्टे, भुजिया आदि बनवाना, बैल गाड़ियाँ किराये पर देना, दास-दासी का व्यापार आदि ये महाहिंसा के कार्य हैं। कसाईखाना, पशु-वध आदि महाहिंसा के कार्य हैं। इनसे बचो और अहिंसक बनो।

2. महापरिग्रह से बचो। जीवन की आवश्यकता पूरी हो उसी में संतोष रखो। अधिक धन, जमीन, मोटर गाड़ियाँ आदि मत रखो। अल्प परिग्रही बनो।

3. एकान्तवाद धर्म नहीं है। सब कुछ नियत नहीं है। मैं जो सोचता हूँ या कहता हूँ या करता हूँ वही ठीक है इस एकान्तवाद को छोड़ो और अनेकांतवादी बनो।

सब कुछ नियत नहीं है। मैं जो करता हूँ, कहता हूँ वह गलत भी हो सकता है। दूसरों की बात सुनो, सोचो, समझो, यह अनेकांतवाद है। यदि सभी कुछ नियत होता तो कर्मों के दो भेद निकाचित और अनिकाचित क्यों किए जाते ? सर्वज्ञ नियत को नियत रूप में और अनियत को अनियत रूप में देखते हैं।

विचारणीय बात है। अपने सूत्रों को सोते-जागते, उठते-बैठते हर समय स्मरण कीजिये। दिन में समय निकाल कर कई बार दोहराइये।

प्रारम्भिक तैयारी—दुःख चेतना, सुख-चेतना एवं आर्त-रौद्रध्यान से निवृत्ति की साधना के लिये अपने अवगुणों की सूची बनाइये। इनके संबंध में गहरा अध्ययन एवं चिंतन मनन कीजिये। इन अवगुणों को दूर करने के लिये कुछ संक्षिप्त छोटे वाक्य या सूत्र बना लीजिये। उन सूत्रों को कुछ महीनों तक बार-बार दोहराते रहने और जीवन में उतारने से आत्मा निर्विकार बन सकेगी।

साधना का प्रारम्भ—मन बहुत चंचल है। मन को वश में करने के लिये कई प्रकार के ध्यान किये जाते हैं। किन्तु आत्म-शुद्धि के लिये साधना करने वाले प्राणी को प्रारम्भ से ही किसी एक दुर्गुण-निवृत्ति की साधना के लिये अच्छा यह रहेगा कि प्रारम्भ से ही उस दुर्गुण के विरोधी भाव का अध्ययन, चिंतन, ध्यान, जप, स्वाध्याय एवं बार-बार स्मरण किया जावे और पूर्ण सजग रहकर जीवन की प्रत्येक छोटी या बड़ी सभी घटनाओं में उस दुर्गुण से बचा जावे।

सर्वप्रथम क्रोध निवृत्ति हेतु समता के किसी सूत्र का ध्यान करना प्रारम्भ किया जावे। इसका एक सूत्र है—“चोट, रोग या गरीबी को अपने पाप-कर्म का फल मानो। दुःख में समता रखते हुए दुःख को पाप-कर्म काटने की दवा मानो। उसमें निमित्त बनने वाले को पाप-कर्म काटने की दवा देने वाला डॉक्टर मानो।”

कुछ दिनों या महीनों की साधना के बाद क्रोध-निवृत्ति में सफलता मिल ही जावेगी। सफलता देरी से मिले तो भी धैर्यपूर्वक साधना में लगे रहें।

क्रोध निवृत्ति के बाद किसी दूसरे विकार निवृत्ति की साधना प्रारम्भ कर दीजिये और उसमें सफलता मिलने के बाद किसी तीसरे अवगुण-निवृत्ति का प्रयास प्रारम्भ करें। इस प्रकार एक के बाद दूसरे की ओर दूसरे के बाद तीसरे की निवृत्ति में लगें।

साधना में सफलता के लिये जितनी आवश्यकता एकाग्रता की है उससे भी ज्यादा महत्त्व स्वाध्याय के सूत्रों की पुनरावृत्ति का है। “जितनी पुनरावृत्ति, उतनी ही सफलता।”

कुछ भी ज्ञान नहीं होते हुए भी केवल देहात्म-भेद-ज्ञान की अनुभूति से कि जिस प्रकार छिलके से दाल अलग होती है उसी प्रकार शरीर से आत्मा अलग है, उन्हें केवलज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति हो गई थी।

शरीर और आत्मा दोनों ऊपर से एक ही शरीर के रूप में दिखाई देने पर भी वास्तव में दोनों अलग-अलग हैं। शरीर तो पानी, मिट्टी, आग, हवा और आकाश—इन पाँच तत्त्वों से बना है। आत्मा अति सूक्ष्म अमूर्त चेतन द्रव्य है जो अशरीरी और पूर्णतः ज्ञान स्वभावी और आनन्दघन है। यह अजर, अमर, अविनाशी है, जिसका छेदन, भेदन आदि नहीं हो सकता।

बहुत से लोगों को शरीर और आत्मा के अलग-अलग होने का पता भी नहीं है और जिन्होंने इस विषय में कुछ पढ़ा या सुना है उन्हें इसका विश्वास भी जल्दी नहीं होता। क्योंकि आत्मा प्रत्यक्ष रूप में दिखाई नहीं देती और जब तक लोग किसी चीज को देख नहीं लेते, उसकी अनुभूति नहीं कर लेते या उसके पुष्ट प्रमाण नहीं मिल जाते, तब तक वे सहसा उस पर विश्वास नहीं करते।

जिस प्रकार दूध में घी मिला हुआ रहता है किन्तु वह दिखाई नहीं देता उसी प्रकार शरीर में आत्मा व्याप्त है किन्तु वह दिखाई नहीं देती। किसी लोहार की दुकान में तेज आग में खूब तपा हुआ लाल-लाल लोहे का गोला देखने वाला मनुष्य समझ जाता है कि लोहा अलग चीज है और गोले की ललाई दूसरी चीज है। उसी प्रकार चिन्तनशील ज्ञानी पुरुष समझता है कि मिट्टी की बनी हुई देह एक चीज है और इस देह को चेतना, जीवन, शक्ति आदि देने वाली आत्मा दूसरी चीज है। वह शरीर में होने वाली अनेक शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं के चिंतन-मनन द्वारा शरीर और आत्मा के अलग-अलग होने की अनुभूति करने लगता है।

जिस प्रकार तिलों में तेल, वनस्पति में शहद, फूलों में सुगन्ध, काष्ठ में अग्नि, दूध में घी मिला हुआ है उसी प्रकार इस जड़ भौतिक देह में आत्म-प्रदेश मिले हुए हैं। कुछ भौतिक पदार्थों की मिलावट को तो अलग करके देखा जा सकता है किन्तु शरीर से आत्मा को पृथक् करके इन भौतिक आँखों से नहीं देखा जा सकता। आत्मा के अस्तित्व की तो केवल अनुभूति ही की जा सकती है। शरीर के अन्दर से आत्मा के निकल जाने पर शरीर की क्रियाएँ बंद हो जाती हैं। उसका हिलना-डुलना, बोलना, देखना आदि सब समाप्त हो जाते हैं और वह निर्जीव देह जला दी जाती है या गाड़ दी जाती है।

अद्भुत ज्योति है। किन्तु अग्नि, दीपक, बिजली आदि की ज्योति की भाँति इसको मानकर आत्म-ध्यान करना सही ध्यान नहीं है। वह आत्मा ध्यान नहीं है। ऐसा ध्यान तो मात्र पुद्गल का ध्यान नहीं है।

आत्मा अरूपी चेतन द्रव्य है। इसका लाल, पीला, सफेद आदि कोई रंग नहीं है। आत्म ध्यान करते समय किसी रंग का ध्यान करना जड़ पुद्गल का ध्यान ही है।

आत्मा अमूर्त है, अरूपी है। इसके कोई शब्द रूप, रस, गंध, स्पर्श नहीं है। यह चर्म-चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता। संसार के किसी भौतिक पदार्थ से इसकी उपमा नहीं दी जा सकती। इसको केवल, ज्ञान द्वारा ही जाना जा सकता है।

आत्मा के ध्यान करने के संबंध में इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि जिस प्रकार सिद्धों का ध्यान उनके गुणों के माध्यम से ही किया जा सकता है उसी प्रकार आत्मा का ध्यान भी आत्मा के गुणों के माध्यम से ही किया जा सकता है। आत्मा में चेतना, ज्ञान, संवेदनशीलता, शक्ति आदि हैं। उन्हीं के ध्यान से आत्मा का ध्यान किया जा सकता है।

आत्मा के स्वरूप का, उसकी शक्ति का यथार्थ ज्ञान ही आत्म-दर्शन के नाम से पुकारा जाता है।

मन सूक्ष्म होते हुए भी पुद्गल है। वह अमूर्त, सूक्ष्म चेतन आत्मा को नहीं देख सकता। महात्मा विनयचंदजी ने कहा है—

अनंत जिनेश्वर नित नमूं अद्भुत ज्योति अलेख।

ना कहिये ना देखिये, जाके रूप न रेख॥

सूक्ष्म थी सूक्ष्म प्रभु, चिदानन्द चिद् रूप।

पवन शब्द आकाश थी, सूक्ष्म ज्ञान स्वरूप॥

असल में दीर्घकाल के आत्म-ध्यान के अभ्यास से आत्मा स्वयं ही स्वयं को जान व पहचान सकती है।

आत्मा के ध्यान में मुख्य रूप से तीन बातों की साधना करनी चाहिये। प्रथम, शरीर अलग है और मैं (आत्मा) अलग हूँ। दूसरी, यह शरीर मेरा नहीं है। तीसरी, इस शरीर में जो चेतना है वही मैं (आत्मा) हूँ।

आत्म ध्यान की विधि

1. आप सीधे खड़े होकर या सीधे बैठकर या सीधे लेटकर, अपने शरीर को देखकर सोचिये—“यह शरीर मैं नहीं हूँ। यह शरीर अलग है, मैं

3. पशु-पक्षियों के शरीर में आत्म तत्त्व का चिंतन करने से उनके प्रति आप में दया भाव की उत्पत्ति भी सम्भव हो सकेगी। कीड़ों-मकोड़ों में आत्म तत्त्व का चिंतन करने वाला व्यक्ति अनेक प्राणियों की अनावश्यक हिंसा से बच सकेगा।

4. पृथ्वीकाय, जलकाय, वनस्पतिकाय, अग्निकाय एवं वायुकाय में भी आत्म तत्त्व का विचार करने वाला व्यक्ति इनकी अनावश्यक हिंसा से बच सकेगा।

5. आत्म-ध्यान इस प्रकार भी किया जा सकता है—“इस शरीर में संवेदनशील है वही मैं (आत्मा) हूँ।”

6. इस शरीर में जो क्रिया-शक्ति है वही मैं हूँ।

7. इस शरीर का संचालक मैं ही हूँ।

8. इस शरीर में जो जीवन है वही मैं हूँ। मेरे बिना यह निर्जीव, निष्क्रिय, बेकार हो जाता है।

9. जो सब कुछ जानता है, जो ज्ञान-स्वभावी है, चिंतन के साथ-साथ जिसमें ज्ञान प्रकट होता रहता है वही ज्ञान का भंडार मैं हूँ।

10. जो स्वयं का ध्यान करते हुए स्वयं में लीन होकर आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति प्राप्त करता वही मैं (आत्मा) हूँ।

11. आत्मा हूँ, आत्मा हूँ, देह से मैं भिन्न हूँ।

कर्म मुक्त होने पर, मैं सिद्ध हूँ, मैं सिद्ध हूँ।

विकार-निवृत्ति की साधना

आत्म ध्यान की भाँति कषाय या विकार निवृत्ति की साधना भी आत्मा पर आये हुए विकारों को हटाने के लिये अत्यावश्यक है। इसमें 1. अपने अङ्गुणों की सूची बनाई जावे। 2. उनके लिये पश्चात्ताप किया जावे। 3. किये हुए पापों के लिए प्रायश्चित्त लिया जावे। जैसे कुछ समय के लिये मीठा या नमक छोड़ना, तप करना, दान देना आदि। 4. उन विकारों के बारे में विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया जावे। जैसे उस विकार के प्रकार, कारण, कार्य, धानि, उसके त्याग से लाभ कुछ उदाहरण हैं। उनसे निवृत्त होने के उपाय संकेत जावे। 6. निवृत्ति की साधना की जावे।

इस साधना में स्वाध्याय का प्रमुख स्थान है। हमारे अन्दर साधारणतया 24 अङ्गुण पाये जाते हैं उनमें से कुछ से निवृत्ति पाने के लिये कुछ सूत्र ऐसे दिये गये हैं जिनका नित्य दिन में कई बार चिंतन व स्वाध्याय किया जावे।

अलग हूँ।" फिर शरीर के किसी भाग को छू कर उसमें व्याप्त सूक्ष्म चेतना की अनुभूति करते हुए सोचिये—“इस शरीर में यह जो सूक्ष्म चेतना है वही मैं (आत्मा) हूँ।” कुछ समय तक इस चेतना की एकाग्रतापूर्वक अनुभूति करते हुए चिंतन करते रहिये—“यह जो सूक्ष्म चेतना है वही मैं हूँ।”

मनोविज्ञान बताता है कि मनुष्य जिस विचार को बार-बार दोहराता है वह विचार उसके मन में स्थायी रूप से जम जाता है। वह स्थायी संस्कार बन जाता है। वह अवचेतन मन में उतर जाता है और साधक के जीवन में आचरण का अंग बन जाता है।

प्रारम्भ में देहात्म-भेद में श्रद्धा नहीं होने वाले व्यक्ति भी यदि इस साधना में कुछ महीनों तक लगे रहें तो मनोवैज्ञानिक नियम के अनुसार उनमें श्रद्धा उत्पन्न हो जावेगी।

इसी प्रकार इस मानव देह में व्याप्त संवेदनशीलता, शक्ति, जीवन व अन्य गुणों की अनुभूति द्वारा आत्मा को अर्थात् स्वयं को जानें, समझें व पहिचानें। स्वयं के स्वरूप एवं शक्ति का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करें जिससे धीरे-धीरे देहासक्ति घटे और आत्मा का विकास हो सके।

जिस प्रकार गुणों के चिंतन से सिद्धों का रूपातीत ध्यान किया जाता है उसी प्रकार ज्ञान, सुख, अगुरुलघुत्व अपने शरीर प्रमाण अपनी अवगाहना आदि के चिंतन द्वारा आत्मा का ध्यान किया जा सकता है।

स्वयं को कर्म मुक्त मानकर, कल्पना द्वारा लोक के अग्रभाग में स्थित मानकर, सिद्धों की भाँति स्वयं का भी सिद्ध रूप में ध्यान किया जा सकता है।

2. कल्पना कीजिये कि आपके सामने आपका कोई मित्र या कोई मनुष्य बैठा है। आप उसके शरीर में व्याप्त, किन्तु उसके शरीर से भिन्न उसकी आत्मा की कल्पना कीजिये। चिंतन कीजिये—“इस मनुष्य में चेतना है, संवेदना है, शक्ति है, ज्ञान है, जीवन है, वही इसकी आत्मा है। मूलतः इस प्राणी की आत्मा और सिद्धों की आत्मा समान है। कर्म-मुक्त होने पर यह भी सिद्ध बन सकेगा।” आप उसके शरीर का, उसके दोषों का चिंतन नहीं करें। किन्तु उसके आत्म तत्त्व का चिंतन करें। इससे दो लाभ होंगे। प्रथम देहात्म भेद श्रद्धा बढ़ेगी। दूसरे, उससे राग-द्वेष की संभावना घटेगी। इस चिंतन में दोनों का ही लाभ होगा।

यहाँ इस बात का ध्यान रखें कि पुरुष, पुरुषों के शरीर में और स्त्रियाँ, स्त्रियों के शरीर में आत्मा के अस्तित्व का चिंतन करें।

3. पशु-पक्षियों के शरीर में आत्म तत्त्व का चिंतन करने से उनके प्रति आप में दया भाव की उत्पत्ति भी सम्भव हो सकेगी। कीड़ों-मकोड़ों में आत्म तत्त्व का चिंतन करने वाला व्यक्ति अनेक प्राणियों की अनावश्यक हिंसा से बच सकेगा।

4. पृथ्वीकाय, जलकाय, वनस्पतिकाय, अग्निकाय एवं वायुकाय में भी आत्म तत्त्व का विचार करने वाला व्यक्ति इनकी अनावश्यक हिंसा से बच सकेगा।

5. आत्म-ध्यान इस प्रकार भी किया जा सकता है—“इस शरीर में संवेदनशील है वही मैं (आत्मा) हूँ।”

6. इस शरीर में जो क्रिया-शक्ति है वही मैं हूँ।

7. इस शरीर का संचालक मैं ही हूँ।

8. इस शरीर में जो जीवन है वही मैं हूँ। मेरे बिना यह निर्जीव, निष्क्रिय, बेकार हो जाता है।

9. जो सब कुछ जानता है, जो ज्ञान-स्वभावी है, चिंतन के साथ-साथ जिसमें ज्ञान प्रकट होता रहता है वही ज्ञान का भंडार मैं हूँ।

10. जो स्वयं का ध्यान करते हुए स्वयं में लीन होकर आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति प्राप्त करता वही मैं (आत्मा) हूँ।

11. आत्मा हूँ, आत्मा हूँ, देह से मैं भिन्न हूँ।

कर्म मुक्त होने पर, मैं सिद्ध हूँ, मैं सिद्ध हूँ।

विकार-निवृत्ति की साधना

आत्म ध्यान की भाँति कषाय या विकार निवृत्ति की साधना भी आत्मा पर आये हुए विकारों को हटाने के लिये अत्यावश्यक है। इसमें 1. अपने अवयवों की सूची बनाई जावे। 2. उनके लिये पश्चात्ताप किया जावे। 3. किये हुए पापों के लिए प्रायश्चित्त लिया जावे। जैसे कुछ समय के लिये गीता या नमक छोड़ना, तप करना, दान देना आदि। 4. उन विकारों के बारे में विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया जावे। जैसे उस विकार के प्रकार, कारण, कार्य, इति, उसके त्याग से लाभ कुछ उदाहरण हैं। उनसे निवृत्त होने के उपाय सोचे जावें। 6. निवृत्ति की साधना की जावे।

इस साधना में स्वाध्याय का प्रमुख स्थान है। हमारे अन्दर साधारणतया दो अलग-अलग पाये जाते हैं उनमें से कुछ से निवृत्ति पाने के लिये कुछ सूत्र गढ़े दिये गये हैं जिनका नित्य दिन में कई बार चिंतन व स्वाध्याय किया जावे।

मंडराते रहोगे और दुःख पावोगे। दान दो, दान दो, दान दो, संग्रह मत करो, दान दो।

8. विकथा—दूसरे लोगों की बातों की अनावश्यक चर्चा, उनके दोषों का कथन, श्रवण, दर्शन, चिंतन, दुनिया भर को स्वार्थ प्रेरित, स्वार्थभरी, पक्षपातपूर्ण गन्दी राजनीति आदि की बातों के सच्चे-झूठे समाचार, लेख, भाषण एवं आलोचनाओं को पढ़ना और उनके संबंध में राग-द्वेषात्मक विचारों में पड़ना विकथा अर्थात् व्यर्थ की कथा है। यह भाव हिंसा है, अनर्थ दण्ड है, प्रमाद है, असत्य आचरण है। इससे बचने का साधारण उपाय है—मौन और मित-भाषण (कम बोलना) और वास्तविक अचूक उपाय है सत्संगति, सत्साहित्य का पढ़ना, स्वाध्याय, आत्म-चिंतन, आत्म-ध्यान एवं निस्वार्थ निष्काम शुद्ध पर-सेवा में लगे रहना। विकथा भयंकर मानसिक रोग है, इससे बचिये, बचिये, बचिये।

मुनि गजसुकुमाल आदि के गुणों का चिंतन कथन विकथा नहीं है। यह गुणानुराग है, प्रमोद भावना है, कर्मों की निर्जरा है और धर्मध्यान है।

9. शील-पालन—सेठ सुदर्शन की शील रक्षा की और विजय सेठ और विजया सेठानी के अखंडित शील-पालन की कथा का श्रवण कथन, अध्ययन, अनुमोदन एवं ध्यान करने से उत्पन्न होने वाली शील तरंगों से दृढ़ बनी शील-भावना को संसार की कोई भी शक्ति खंडित करने में समर्थ नहीं है।

10. “शील, शील, शील” की ध्वनि से, जप से, ध्यान से शील के पुद्गल हमारे पास एकत्रित होकर हमें शील पालन में दृढ़ बनाते हैं।

11. “समता, समता, समता” की ध्वनि, जप व ध्यान से समता के सूक्ष्म पुद्गल आकर हमें समता पालन में दृढ़ बनाते हैं।

12. सत्य—साधारण मनुष्य से देवता में, देवता से तपस्वी में, तपस्वी से सत्यवादी में अधिक शक्ति होती है। सत्य में हजार हाथियों का बल होता है। सत्यवादी की देवता भी सहायता करते हैं।

13. देहासक्ति हटाने का सूत्र—यह शरीर मेरा नहीं है। यह नाशवान है। यह रोगों का घर है। यह दुःखों की खान है।

14. परिवार मोह हटाने का सूत्र—जब पुण्य तुम्हारे पास नहीं, परिवार तुम्हारा क्या करे ?

